उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

मध्यकालीन कविता (भाग 2)

दूसरा सत्र (MAHL 506)

विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो एस.डी.तिवारी. विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.,दिल्ली
प्रो.डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो.नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डा.शशांक शुक्ला** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. पुनीत कुमार राय, हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय	1,2,3
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	4,5,6
डॉ. अधीर कुमार, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर	7,8

कापीराइट©उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: जून, 2012 पुनर्संस्करण 2022

प्रकाशकः निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन

mail : studies@uou.ac.in

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

ISBN - ***978-93-84632-68-7***

दूसरे सत्र हेतु मध्यकालीन कविता MAHL 502 भाग – दो

खण्ड 1 – भक्तिकालीन कविता : स्वरूप एवं प्रक्रिया **पृष्ठ संख्या**

इकाई 1 – भक्तिकालीन कविता का उदय 1-21

इकाई 2 – भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास 22-43

इकाई 3 – भक्तिकालीन कविता: विविध शाखाएँ 44-66

खण्ड 2 – भक्तिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना **पृष्ठ संख्या**

इकाई 4 – कबीर :जीवन एवं साहित्य 67-75

इकाई 5 – कबीर : पाठ एवं आलोचना 76-92

इकाई 6 – सूरदास : साहित्य एवं आलोचना 93-118

इकाई 7 – जायसी: जीवन एवं साहित्यालोचना 119-133

इकाई 8 – तुलसी : परिचय, पाठ एवं आलोचना 134-149

द्वितीय सत्र हेतु	मध्यकालीन कविता	भाग दो

MAHL 506

खण्ड 3 – भक्तिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 9 – मीराबाई : पाठ एवं आलोचना	151-171
इकाई 10 – नानक : परिचय, पाठ एवं आलोचना	172-190
खण्ड 4 – रीतिकालीन कविता : परिचय, पाठ एवं आलोचना	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 11 – रीतिकाल : परिचय एवं आलोचना	191-205
इकाई 12 – बिहारी: परिचय, पाठ एवं आलोचना	206-231
इकाई 13 – केशवदास : परिचय, पाठ एवं आलोचना	232-253
इकाई 14 – घनानन्द : परिचय, पाठ एवं आलोचना	254-273
इकाई 15 – मतिराम : परिचय, पाठ एवं आलोचना	274-289

इकाई 9 मीराबाई : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भक्ति आन्दोलन, हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा एवं मीराबाई
9.4 मीराबाई: व्यक्तित्व एवं रचनायात्रा
9.5 काव्यगत विशेषताएँ
9.5.1 भक्ति का स्वरूप
9.5.2 साधना और दर्शन
9.5.3 प्रेम और सौन्दर्य
9.5.4 उत्कट विरहानुभूति एवं वेदना का स्वर
9.5.5 प्रतिरोध का स्वर एवं स्त्री स्वातंत्र्य
9.6 शिल्प विधान
9.7 मीराबाई की कविता का मूलपाठ
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की आध्यात्मिक प्रेरणा ने जिन महान कवियों को जन्म दिया, उनमें राजस्थान की मीराबाई का विशिष्ट स्थान है। नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास, मलूकदास, हरीराम व्यास आदि भक्तों और सन्तों ने इनका गुणगान किया है। नाभादास ने मीरा के संघर्ष के महत्त्व को रेखांकित करते हुए भक्तमाल ने लिखा है -

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलियुगहि दिखायो ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो ।।

बाल्यावस्था में अनेक कष्टों को सहते हुए उन्होंने अपना जीवन साधु-संगति एवं कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया। वे कृष्ण की मूर्ति को बेसुध होकर निहारती तथा उसके समक्ष विह्वल होकर नृत्य करतीं, वे घोषित रूप से कृष्ण को अपना पति कहतीं। 'राणा के साथ तो उनका विवाह सांसारिक था, शरीर का साथ था, परन्तु मीर अपने अंतर्मन से जिसे पति मानती थीं, जिसके साथ वे आत्मा के स्तर पर सदा-सदा के लिए बँधी थीं, वह तो अविनाशी और अक्षय था, वहाँ कैसा वैधव्य और कैसा विछोह –

म्हारो साँवरो ब्रजवाशी।
जग सुहाग मिथ्या री सजणी होवाँ हाँ मिट ज्याशी,
बरन कर्यां अविनाशी म्हारो काड़-ब्याड़णा खाशी।

यह सब होते हुए भी कहीं-कहीं मीरा के यहाँ नारी होने के कारण अबला होने का अहसास भी है, किन्तु फिर भी मीरा ने कहीं समझौता नहीं किया और न ही सामंतवादी व्यवस्था के सामने हतदर्प हुई। उन्होंने घर-परिवार, राजसत्ता, धर्म सत्ता सभी को चुनौती दे दिया, उसकी औकात बता दी और निर्भय होकर स्वयं को प्रिय के प्रति समर्पित कर दिया। उन्होंने साहस के साथ कहा-

राजा रूठ्याँ णगरी त्यागाँ, हरि रूठ्याँ कण जाणा,
राणा भेजा बिखराँ प्याडा, चरणामृत पी जाणा ।।

मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि मीरा को अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए कबीर की तरह न 'बहुरिया' बनने की आवश्यकता है और न सूर की तरह गोपियों, राधा की आवश्यकता है, न ही जायसी के तरह किसी लोककथा की आवश्यकता है। यह सीधा, प्रत्यक्ष प्रेमनिवेदन है, हृदय की पुकार है, जो निर्द्वन्द्व एवं निर्भय है - 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनों, ज्यों रण माँही सूरो।' इनका संघर्ष सूरा का संघर्ष है, कबीर के शब्दों में कहें तो 'कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम'। यह पूरी संकल्प शक्ति एवं अटूट आस्था, अदम्य जिजीविषा का जीवन संघर्ष है - 'अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी'। कबीर, जायसी, सूर के प्रेम लोक की चुनौतियाँ प्राथमिक स्तर की हैं, भावात्मक हैं किन्तु मीरा के समक्ष पारिवारिक, सामाजिक जीवन एवं साक्षात् भौतिक जीवन की चुनौतियाँ एवं दंश है, जिसके विरुद्ध मीरा ने खुला विद्रोह कर दिया था -

'लोक लाज कुल कानि जगत की, दइ बहाय जस पानी।'

कबीर ने भी कहा था कि 'कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि', 'कबीर रेख सिन्दूर की, काजल दिया न जाइ' किन्तु मीरा का संघर्ष बहुआयामी है। उसके विरोध में राणा की सामंती राजसत्ता है, सिसोदिया कुल की मर्यादा एवं शील का दंश है, पुरुष की प्रभुत्व सत्ता है और सामंती समाज की लोकरूढ़ि, लोक-लाज का पूरा तंत्र है, फिर भी मीरा ने कहीं हार नहीं मानी। साधु संगत की सात्विक ताप एवं कृष्णमिलन की आस से उन्होंने पूरे तंत्र को कठघरे में खड़ा कर दिया -

सतसंगति मा ज्ञान सुणै छी दुरजन लोगाँ नै दीठी।
मीरा रो प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो ना अँगीठी।

अतः मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहें तो ''मीरा का विद्रोह एक विकल्प-विहीन व्यवस्था में अपनी स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज का संघर्ष है। उनको विकल्प की खोज के संकल्प की शक्ति भक्ति से मिली है। यह भक्ति आन्दोलन का क्रांतिकारी महत्त्व है। मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री-स्वर की मुखर अभिव्यक्ति है।

उनकी स्वतन्त्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी है।'' (भक्ति आन्दोलन एवं सूरदास का काव्य, पृष्ठ 43)

9.2 उद्देश्य:

इस इकाई में आप हिन्दी निर्गुण कृष्णभक्ति काव्य परम्परा के विशिष्ट कवि मीराबाई का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- हिन्दी साहित्य ही नहीं भारतीय साहित्य के इतिहास में मीराबाई के योगदान को जान सकेंगे।
- भक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में कृष्णभक्ति काव्य परम्परा की भूमिका को समझ सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में मीराबाई के महत्व को समझ सकेंगे।
- मीराबाई के व्यक्तित्व एवं रचनाओं के विषय में संक्षेप में जान सकेंगे।
- मीराबाई के काव्य की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- मीराबाई के संकलित पदों को पढ़कर उनकी भाषा, चेतना एवं संगीतात्मक अनुभूति प्रवणता से परिचित हो सकेंगे।

9.3 भक्ति आन्दोलन, हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य परम्परा एवं मीराबाई

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि भक्ति का सूत्रपात महाभारत काल में हुआ और प्रवर्तन पुराण काल में हुआ किन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि भक्ति के बीज वेदों में भी विद्यमान हैं। वेदकाल के जो देवी-देवता हैं, वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक के रूप में दिखाई देते हैं, जहाँ मनुष्य इनका आहवान करता हुआ दिखाई देता है। उपनिषद युग इस अर्थ में अगला चरण है, जहाँ मनुष्य का ध्यान प्राकृतिक शक्तियों की अपेक्षा परमशक्ति के रूप में ब्रह्म की ओर उन्मुख हुआ और प्रकृति देवों के स्थान पर त्रिदेव - ब्रह्मा, विष्णु, महेश - की उपासना का मार्ग प्रशस्त होने के साथ ही व्यक्तिगत देवों की स्थापना भी हुई। फलतः भक्ति की संकल्पना भी अस्तित्व में आई।

इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही साधना एवं मोक्ष के तीन मार्ग दिखाई देते हैं - ज्ञान, कर्म, भक्ति। उपनिषद् काल में ज्ञान की प्रधानता रही तो ब्राह्मण काल में कर्म की किन्तु जब ज्ञान एवं कर्म दोनों में ही आडम्बर बढ़ता गया और ये दोनों ही मार्ग आमजन के लिए दुरूह होते गये तो भक्ति का उद्भव हुआ, किन्तु इसी के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म का भी उदय वैदिक संस्कृति के प्रतिरोध के रूप में हुआ, जिसने सदाचार, अहिंसा, नैतिकता एवं सात्विकता को रेखांकित किया, किन्तु बौद्ध एवं जैन धर्म में भी रूढ़िवादिता बढ़ती गयी। ठीक इसी समय दक्षिण में आलवारों, नयनारों एवं शंकराचार्य ने बौद्ध-जैन धर्म को कड़ी टक्कर देते हुए ऐसे भक्ति

आन्दोलन का सूत्रपात किया, जो धार्मिक आवरण में होने के बावजूद धार्मिक आन्दोलन के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण है। भक्ति आन्दोलन का मूल चरित्र ही वर्ण एवं वर्ग विरोधी है, मनुष्यता केन्द्र में है। श्री के0 दामोदरन भी लिखते हैं, 'भक्ति आन्दोलन का मूल आधार भगवान विष्णु और उनके अवतारों, राम और कृष्ण की भक्ति थी। किन्तु यह शुद्धतः एक धार्मिक आन्दोलन नहीं था। वैष्णवों के सिद्धान्त मूलतः उस समय व्याप्त सामाजिक आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थे। सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया। सामाजिक विषय वस्तु में वे जातिप्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे। इस आन्दोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। व्यापारी और दस्तकार सामंती अवशोषण का मुकाबला करने के लिए इस आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त करते थे। यह सिद्धान्त कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य, फिर वे ऊँची जाति के हों अथवा नीची जाति के, समान हैं, इस आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया, जिसने पुरोहित वर्ग और जाति के आतंक के विरूद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारों ओर एकजुट किया। इस प्रकार मध्ययुग के इस महान आन्दोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जनसमुदायों की एक सुसंबद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृष्ठ 327) इसीलिए मैनेजर पाण्डेय भक्ति आन्दोलन को 'सामंती संस्कृति के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का अखिल भारतीय आन्दोलन' मानते हैं तो रामविलास जी भक्ति काव्य के 'सामंतवाद विरोधी रूप' और 'मानववादी स्वर' को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं और उनकी स्पष्ट मान्यता है कि यह किसी एक वर्ग का आन्दोलन नहीं था, उसमें किसान, शिल्पकार, व्यापारी आदि सभी शामिल थे। वास्तव में भक्ति आन्दोलन सामंती व्यवस्था से पीड़ित और उससे मुक्ति के लिए छटपटाते संघर्षशील सभी वर्गों का व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसके उत्थान में आलवारों - नयनारों की भूमिका है तो शंकराचार्य की भी। रामानुज में धार्मिक सद्भाव, रूढ़िहीनता का स्वर एवं लोकवादी चेतना तो है ही, उन्होंने अपने विशिष्टाद्वैत के माध्यम से आलवारों की भक्ति को दार्शनिक आधार देते हुए भक्ति की परम्परा को वेदों से भी जोड़ने का प्रयास किया और भक्ति का द्वार सभी के लिए खोल दिया, किन्तु खान-पान का निषेध वे मानते रहे। बावजूद इसके इस अर्थ में भी रामानुजाचार्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है कि उनकी शिष्य परम्परा में ही रामानन्द भी आते हैं, जो उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन में अपना खास महत्व रखते हैं। पुरोहितवाद के खिलाफ प्रतिरोध का जो स्वर मुखरित किया, वह उनके अनुयायियों खासकर रामानन्द में ओर भी अधिक क्रान्तिकारी भूमिका में दिखाई देता है। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामानन्द को 'मध्ययुग की समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरू, के रूप में रेखांकित किया है, क्योंकि सामंतवाद, वर्णवाद एवं छुआछूतवादी व्यवस्था से टकराने की जो परम्परा शुरू की उसमें शूद्र-द्विज, स्त्री-पुरुष, निर्गुण-सगुण, अमीर-गरीब, हिन्दू-'मुसलमान सभी अपनी लोक चेतना, स्थानीय लोक संस्कृति-भाषा के साथ साझीदार हो गये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, 'रामानन्द ने देखा कि भगवान के शरणागत होकर जो भक्ति के पथ

में आ गया उसके लिए वर्णाश्रम का बंधन व्यर्थ है, इसीलिए भगवद्भक्त को खान-पान के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। यदि ऋषियों के नाम पर गोत्र और परिवार बन सकते हैं तो ऋषियों के भी पूजित परमेश्वर के नाम पर सबका परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार सभी भाई-भाई है, सभी एक जाति के हैं। श्रेष्ठता भक्ति से होती है, जन्म से नहीं। (हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 56) इसमें कोई दो राय नहीं कि यह भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय आन्दोलन है, जिसमें आलवारों-नयनारों, रामानुजाचार्य, रामानन्द के साथ ही बंगाल में चण्डीदास से लेकर चैतन्य तक, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर से लेकर नामदेव, तुकाराम, समर्थ गुरू रामदास तक, गुजरात के वैष्णव आचार्य मध्वाचार्य से लेकर ब्रज के वल्लभाचार्य, निम्बार्क, आसाम के शंकर देव की भी स्थानीय ही नहीं राष्ट्रीय सांस्कृतिक भूमिका है, किन्तु उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन का चरित्र बिल्कुल भिन्न है। जिसकी दो धाराएँ स्पष्टतः दिखाई देती है - निर्गुण एवं सगुण और ये दोनों ही धाराओं के मूल उत्स रामानन्द ही हैं। लोक में उक्ति ही हे -

भक्ती द्राबिड उपजी लाए रामानन्द ।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नौ खंड ।।

अर्थात् भक्ति का उदय तो दक्षिण में हुआ, किन्तु रामानन्द के साथ उत्तर में पैदा हुई भक्ति विलक्षण है। सगुण काव्यधारा में स्पष्टतः दो अन्तर्धाराएं दिखाई देती हैं - कृष्ण भक्ति एवं रामभक्ति। जहाँ तक रामभक्ति काव्य परम्परा का प्रश्न है, वहाँ गोस्वामी तुलसीदास की केन्द्रीय स्थिति है ओर वे इस परम्परा के ध्वजवाहक हैं। 'परहित' एवं लोकमंगल को मान्यता देते हुए भी वे वर्णाश्रमी व्यवस्था के पक्षधर हैं, शास्त्र-पुराण-मतवादी हैं, मन्दिर-मूर्ति, तीर्थ, व्रत, पर्व, संध्या वंदन, यज्ञ, जप-'तप, दान-पुण्य के समर्थक हैं और इसे धर्म का मूल भी मानते हैं। इस भक्ति के उदय को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता स्पष्ट है, 'भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी उत्तर भारत में भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ जिन्होंने वर्ण-धर्म, आश्रम धर्म, कुलाचार, वेद-विहित कर्म, शास्त्र प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सब के साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्यधर्म को छिन्न भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वांगदर्शी लोक व्यवस्थापक महात्मा के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के चरित्र से बढ़कर अवलम्ब और क्या मिल सकता था।' किन्तु यह शुक्ल जी का विश्लेषण वस्तुतः उनके आर्यधर्म, आचार्य-'व्यवस्था से संचालित है। गोस्वामी तुलसीदास की रामभक्तिशाखा के महत्त्व एवं स्वीकृति को एक बड़ा कारण उनका समन्वयवाद है - लोक और शास्त्र का समन्वय, सगुण-निर्गुण का समन्वय, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय, वैराग्य और गार्हस्थ का समन्वय, पुराण और काव्य का समन्वय, पंडित और अपांडित्य का समन्वय।

जहाँ तक कृष्णभक्ति काव्य परम्परा का पक्ष है वहाँ वर्ण वर्ग की संकीर्णताओं के लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि मध्वाचार्य ने पहले ही अपने शिष्यों को जाति एवं सम्प्रदाय भेद पर आधारित कुरीतियों से दूर रहने की हिदायत दी थी। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि ब्राह्मणों एवं उच्च जातियों की तरह ही शूद्र भी विष्णु की आराधना करने के साथ ही वेद का अध्ययन भी कर सकते हैं। साधना के मार्ग में कोई द्वैत नहीं होना चाहिए। बल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में भी

जातिभेद के लिए कोई जगह नहीं थी। कृष्णदास, कुम्भनदास, और चतुर्भुज दास तो शूद्र थे, रसखान मुसलमान है और विट्ठलनाथ के प्रिय शिष्य हैं, मीराबाई तो स्त्री हैं, किन्तु कहीं भी अबला होने का भाव नहीं है। इस प्रकार छठी-नवीं शताब्दी के तमिल आलवारों, जयदेव, विद्यापति, चैतन्य महाप्रभु से लेकर अष्टछापी कवियों - सूरदास - आदि रसखान से होते हुए मीराबाई को साथ लेकर कृष्णभक्ति काव्य परम्परा का जो स्वरूप है वह अपने मूल चरित्र में सामंतवाद विरोधी है। वह सामंती समाज को संवेदना के धरातल पर अपनी रागमयता से ललकारता तो है ही सामंती देहवाद के स्थान पर प्रेममय रागभाव को स्वीकृति देता है, लोक भाषा के माधुर्य को रेखांकित करता है। इसके साथ ही जब चारों ओर रूढ़िवाद एवं कट्टरता का प्रभुत्व था, तब कृष्ण भक्त कवियों के सामूहिक कीर्तन गायन ने मनुष्य जीवन के अलगाव को दूर करके टूटे-फूटे हृदयों को राग चेतना से एकसूत्र में पिरो दिया। यह कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा का सबसे बड़ा प्रदेय है। यहाँ पुरुष-कवियों-महात्माओं के साथ स्त्री संत मीराबाई भी हैं। एकांतिक प्रेम और नाम साधना के साथ ही सामूहिक कीर्तन साधना पर बल दिया। पुराहितों, मुल्ला-मौलवियों, शास्त्रनिष्ठ आचार्यों की रीतिनीति के विरुद्ध इन संतों ने प्रेम को मनुष्य मुक्ति एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक माना। प्रेम केन्द्रीय उर्जा है, श्रेष्ठ जीवन मूल्य है। मीराबाई ने स्पष्टतः कहा -

माई संवारे रंग राची
साज सिंगार बांध पग घूंघर, लोक लाज तज नाची ।।

यद्यपि कि यह काव्यधारा विस्तृत क्षेत्र में फैली है, फिर भी लोकभाषा को स्वीकृति देती है। सामाजिक बंधनों के प्रति अस्वीकार का भाव है। प्रेमभक्ति एवं आत्मसमर्पण की प्रधानता है –

भजन करस्यां सती न होस्यां, मन मोहमो घण नामी

आराध्य के प्रति व्यक्तिगत रागात्मक संबंध एवं उच्चतर नैतिक बोध किन्तु इस आन्दोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन मीराबाई है, जिनके यहाँ आत्मसमर्पण, आत्मविश्वास के साथ ही स्वाधीनता के लिए संघर्ष भी है जो आध्यात्मिक बाद में है, पहले वह सामाजिक है। नाभादास ने भक्तमाल में मीराबाई के संघर्ष को ठीक से पहचाना है -

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलियुगहि दिखायो ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो ।।

× × × × ×

भक्ति निसान बजाय के काहूते नाहिन लजी
लोक लाज कुल वृंखला, तजि मीरा गिरधर भजी

मीरा के यहाँ शास्त्र एवं लोक दोनों के प्रति विद्रोह का भाव भी है तो प्रत्येक प्रकार की सत्ता के प्रति अस्वीकार का साहस भी। उन्होंने आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों ही विरोधियों को खुली चुनौती दे दिया था क्योंकि उनमें अपने प्रिय के प्रति अटूट आस्था है -

लोक लाज कुल कानि जगत की, दइ बहाय जस पानी।
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी।।

9.4 मीराबाई: व्यक्तित्व एवं रचना यात्रा

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रणेता चरणदास ने 'शबद' नामक संग्रह ग्रन्थ में मीरा के बारे में लिखा है -

दास मीरा पत्नी प्रेम सनमुख चली छोड़ दई जाल कुल नाहिं माना।

इतना ही नहीं इनकी शिष्या दयाबाई ने भी 'विनय मालिका' में लिखा है कि -

विष का प्याला धोरि के, राणा भेज्यो छान
मीरा अचयौ राम कहि, हो गया सुधा समान

इसके अतिरिक्त चौरासी वैष्णवन की वार्ता, श्री तुकाराम बाबाच्या अभंगाची गाथा, मीरां माधुरी, भक्तमाल आदि ग्रन्थों में जो उल्लेख मिलता है, वह मीरा की लोकप्रियता के साथ ही उनके महत्त्व की ओर भी संकेत करता है किन्तु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि भारतीय इतिहास में इस भक्तिमती नारी का कोई प्रामाणिक उल्लेख तक नहीं है। तलवारों की खनखनाहट एवं युद्धघोष के तुमुलनाद के बीच, सुरा-सुन्दरी के आप्लावित सामंतवादी समय में मीराबाई का भक्तिरस से ओत-प्रोत प्रणय निवेदन एवं सर्वस्व समर्पण का भाव भारतीय भक्ति आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। रामचन्द तिवारी ने लिखा है कि, 'मध्यकालीन सामंतीय परिवेश का अतिक्रमण करने वाला मीरा का संघर्षशील दर्दभरा व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी है।' मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन पृष्ठ 83) किन्तु ऐसे क्रान्तिकारी स्त्री भक्त कवयित्री का जीवनवृत्त इतिहास के लिए उलझन बना हुआ है। मीरा के जीवन के विषय में जो जानकारी विविध स्रोतों से उपलब्ध है, वह विवादास्पद है। फिर भी अनेक तथ्य ऐसे हैं, जिस पर सर्वाधिक विद्वान सहमत हैं। सर्वप्रथम कर्नल टाड ने 'ऐनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑव राजस्थान' में मीरा की जीवनी पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए सिद्ध किया है कि वे मेड़ता के राठौर की पुत्री और मेवाड़ के राणा कुम्भा की पत्नी थी। टाड से प्रभावित होकर गोवर्धन माधोराम त्रिपाठी ने 'क्लासिकल पोयट्स ऑफ गुजरात' में मीरा का समय ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्धारित किया है और कृष्ण लाल मोहन लाल झावेरी ने 'माइल स्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर' में मीरा का जन्म 1403 ई. और मृत्यु 1460 ई. में माना है। टाड के ही साक्ष्य पर ग्रियर्सन ने मीरा को 1420 ई. में उपस्थित माना और राजा कुम्भकर्ण को उनका पति माना है। शिवसिंह सेंगर ने भी टाड के आधार पर 1413 ई. में मीराँबाई का विवाह राणा कुम्भकर्ण के साथ होना स्वीकार किया है।

टाड का मत भ्रान्त धारणाओं पर आधारित है। 'टाड ने मीराँ को मेड़तानी माना था और मेड़ता पर सबसे पहले जोधपुर के राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदा जी ने सन् 1461 ई. में अधिकार किया था। अतः 1461 ई. के पूर्व मीराँ का अस्तित्त्व नहीं माना जा सकता था।' (हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, पृष्ठ 448)। जोधपुर के देवी प्रसाद मुंसिफ ने टाड के मत का खण्डन करते हुए मीरा के सम्बन्ध में स्वीकार किया है कि 'मीराँबाई मेड़तिया राठौर रतनसिंह की बेटी, मेड़ते के राव दूदा जी की पोती और जोधपुर को बसाने वाले राव जोधा जी की प्रपौत्री थी। इनका जन्म गाँव चोकड़ी (कुड़की) में हुआ था, जो इनके पिता की जागीर में था। ये सन् 1516 ई. में मेवाड़ के मशहूर महाराणा सांगा के कुँवर भोजराज को ब्याही थीं। (हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, पृष्ठ 448)। टाड की भ्रान्ति का निराकरण हर विलास सारदा (महाराणा सांगा, अजमेर 1918) और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (उदयपुर राज्य का इतिहास) ने भी किया। इन विद्वानों ने मीरा का जन्म सन् 1498 ई. के आस-पास निश्चित किया है। मेड़तियों के कुलगुरुओं की बहियों में भी उनका जन्म वि0सं0 1555 वैशाख सुदि 3 अंकित है और जन्मस्थान के रूप में जोधपुर राज्य का बाजोली ग्राम प्रसिद्ध है। अब यही मत अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है; जिसमें पं0 परशुराम चतुर्वेदी एवं रामकुमार वर्मा उल्लेखनीय हैं। मिश्रबन्धुओं ने भ्रमवश विवाह काल (1516 ई.) को जन्मकाल माना है, जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी स्वीकार करते हैं। विवाह के कुछ ही वर्षों बाद उनके पति की मृत्यु हो गयी और इसके तीन चार वर्ष बाद पिता एवं देवर भी नहीं रहे। किन्तु मीरा के भावलोक में कोई अन्तर नहीं आया क्योंकि उनके जीवन में गिरधर नागर ही सर्वस्व हैं -

हेली म्हांसू हरि बिन रह्यो न जाय
सास लड़ै मेरी नंद खिजावै राणा रह्या रिसाय ।।

किन्तु यहाँ यह स्पष्ट है कि पति के जीवित रहते मीराबाई ने पारिवारिक जीवन की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया और उनके पति कुंवर भोजराज ने भी उनके उत्साह में कोई बाधा नहीं पहुँचाई, किन्तु पति की मृत्यु के बाद वे राजपरिवार की अपेक्षा पर खरी नहीं उतरी क्योंकि जो बचपन से ही जिसने कृष्ण को अपना पति मान लिया हो, वहाँ वैधव्य के लिए कोई कहाँ जगह होगी ? वे भावलोक में सदैव सधवा थीं, गिरधर नागर कृष्ण का नाम-स्मरण, कीर्तन ही उनका जीवन था और यह सामंती सत्ता राज परिवार के लिए असह्य था। इसलिए वे सामंती एवं राज सत्ता के निशाने पर आ गयी, उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया, उन्हें कुलनाशिनी कहा गया, किन्तु वे तो 'गिरधर के हाथ बिकानी' थी। फलतः किसी भी सत्ता से हार नहीं मानी, कहीं-कहीं प्रत्यक्ष चुनौती भी दिया –

राणा जी ! अब न रहूँगी तोरी हटकी ।
साध संग मोंहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की ।

राणा जी ! थे क्यां ने राखो म्यासूं बैर ।
थे तो राणा जी म्हाने इसड़ा लागो, ज्यों ब्रच्छन में कैर ।

मीरा का जीवन जटिल, विषम एवं दुःख-दर्द से भरा है, इसीलिए उनकी कविता में गहरी टीस, बेचैनी के साथ ही विषाद भी है, जो सामंती व्यवस्था की प्रताड़ना एवं रूढ़िवादी मूल्यों से पैदा हुआ है, कृष्ण मिलन की आस उन्हें निर्भय एवं विवेकवान बनाये रखती है –

आवत मोरी गलियन में गिरधारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी।

वे पुष्कर, वृन्दावन, आदि की आध्यात्मिक यात्रा करते हुए द्वारिका पहुँची और यहाँ राव रणछोड़ जी के मंदिर को अपना आश्रय बना लिया। उन्होंने अपना जीवन साधु संगत एवं कृष्ण को समर्पित कर दिया। बेसुध होकर कृष्णमय हो गयी, उन्हें ही अपना पति मानती-'जानती थी -

लगण म्हारी स्याम शूं लागी
णेणा णिरख शुख पाय।
साजां सिंगार शुहागां सजणी प्रीतम मिड़यां धाय।
बरणा वरयां वापुरो जणम्या जणम णसाय।
बरथां साजण सांवरो म्हारो चुड़ड़ो अमर हो जाय।

और यहीं 59 वर्ष की अवस्था में विक्रम संवत 1604 में माह सुदी 5 को उनका स्वर्गवास हो गया। मान्यता है कि मीराबाई भक्ति-आवेश में द्वारिका स्थित अपने सावरिया राव रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गई, किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। समग्रतः मीरा का जीवन आत्मदान का पर्याय है। गिरधर नागर के प्रति मुक्त भाव से समर्पण ही उनकी भक्ति भी है, जीवन भी और काव्य भी। उनका समर्पण रूढ़ियों से मुक्त तो है ही सामंतवाद विरोधी भी है, वह सत्ता विरोधी भी है चाहे वह राजसत्ता हो या धर्म की सत्ता। इस प्रकार वे एक विद्रोहिणी नारी के रूप में दिखाई देती है। उन्होंने लोकलाज, कुलकानि तज 'सन्तन संग बैठ-बैठ' भजन किया, 'पग घुँघरू बाँध नाची, मेवाड़ राज परिवार की पुत्रवधू होकर 'सिसोदिया' राजाओं की परम्परागत लोक लाज के मिथक को तोड़ा, किन्तु कहीं भी वे हतदर्प नहीं है। इतना ही नहीं सम्प्रदायवाद में भी नहीं बँधीं, किसी एक गुरू को मान्यता नहीं दी इसीलिए यहाँ निर्गुण-सगुण दोनों ही धाराओं के बीज तत्व तो दिखाई देते हैं।

मीराबाई द्वारा रचित कही जाने वाली जो पूर्ण या अपूर्ण रचनाएँ प्राप्त हैं अथवा जिनका उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है, उनकी कुल संख्या ग्यारह है - (1) गीत गोविन्द की टीका, (2) नरसी जी का मायरा (माहेरो), (3) राग सोरठ का पद, (4) मलार राग, (5) राग गोविन्द, (6) सत्यभामानुं रूसणं, (7) मीरां की गरबी, (8) रूक्मणीमंगल, (9) नरसी मेहता की हुण्डी, (10) चरीत (चरित्र), (11) स्फुट पद। इसमें से केवल स्फुट पद ही मीराबाई की प्रामाणिक रचना है, अन्य रचनाओं में से कुछ तो किसी अन्य कृतिकार द्वारा रचित हैं, कुछ सम्पादन मात्र है, कुछ लोक प्रचलित जनश्रुतियों अथवा किंवदन्तियों के आधार पर मीराँ के नाम से सम्बद्ध हो गयी हैं।

यही स्फुट पद 'मीराबाई की पदावली' के नाम से विभिन्न रूपों में प्रकाशित है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं -

(1) 'मीराँबाई के भजन' (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1898 ई.)

(2) 'मीराँबाई की शब्दावली' (वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद 1910 ई.)

(3) 'मीराँबाई की पदावली' (साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1932 ई.)

(4) 'मीराँबाई की प्रेम साधना' (अजन्ता प्रेस, पटना, 1947 ई.)

(5) 'मीराँ स्मृति ग्रन्थ' (बंगीय परिषद, कलकत्ता, 1950 ई.)

(6) 'मीराँ वृहत पद संग्रह' (लोक सेवक प्रकाशन, काशी, 1952 ई.)

(7) 'मीराँ माधुरी' (हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी, 1956 ई.)

(8) 'मीराँ सुधा सिन्धु' (मीराँ प्रकाशन समिति, भलवाड़ा, राजस्थान 1957 ई.)

(9) मीरा ग्रन्थावली (दो भाग) (वाणी प्रकाशन, दिल्ली)

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मीराबाई का जन्म.....प्रदेश में हुआ।
2. मीराबाई का जन्म.....ई. में हुआ।
3. मीराबाई की मृत्यु.....नामक स्थान पर हुई।
4. मीराबाई.....शाखा की कवयित्री है।
5. मीराबाई की भक्ति.....भाव की है।

9.5 प्रमुख प्रवृतियाँ:

हिन्दी भक्ति आन्दोलन में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा के बीजतत्व जयदेव के गीत गोविन्द एवं विद्यापति की पदावली में विद्यमान है, किन्तु सूरदास ने गोपाल कृष्ण के गोकुल, वृंदावन और मथुरा के जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंगों को लेकर श्रीमद्भागवत की कथा का कायान्तरण ही कर दिया, इसीलिए सूरसागर को भक्तिसागर एवं रागसागर भी कहा गया। वात्सल्य एवं श्रृंगार का उद्घाटन जैसा सूरदास ने किया, वह अनूठा है। कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, श्री भट्ट, रसखान भी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में उल्लेखनीय है, किन्तु मीराबाई की भूमिका विशेष रूप से रेखांकित करने योग्य है। भक्ति के ऐसे दौर में जब स्त्री को माया एवं कामिनी के पर्याय के रूप में

समझा जा रहा था, तब वे स्त्री अस्मिता की पहचान के रूप में दिखाई देती हैं। वे सामंतवाद विरोधी चेतना से लैस ऐसी कवयित्री हैं, जिन्होंने सामाजिक जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन दोनों में व्याप्त रूढ़ियों, आडम्बरों को उद्घाटित करने का साहस दिखाया। वे कृष्णभक्ति को नयी भंगिमा देती हैं, नये आयाम प्रदान करती हैं, कीर्तन एवं नामस्मरण का भाव सागर निर्मित करती हैं। मैंनेजर पाण्डेय का कथन महत्वपूर्ण है, 'भक्तिकाल के कवियों में मीराबाई का प्रेम सबसे अधिक सहज, उत्कट और विद्रोही है। उनको प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए किसी अलंकार की जरूरत नहीं है, न कबीर की तरह रूपक की, न जायसी की तरह लोककथा की और न सूर की तरह गोपियों की। वहाँ सीधा और प्रत्यक्ष प्रेम निवेदन है, निर्भय और निर्द्वन्द्व आत्माभिव्यक्ति।' (भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, पृष्ठ 40-41) मीराबाई के काव्य की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं -

9.5.1 भक्ति का स्वरूप:

15वी-16वीं शताब्दी में उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों - वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, हरिदासी समप्रदाय, राधास्वामी आदि - ने कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा की लौ प्रज्वलित की थी। इन सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति में भिन्नता के बावजूद मूलभूत साम्यता है जैसे सभी सगुणोपासक हैं, सभी के आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं, सभी का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत की माधुर्य भक्ति है, किन्तु मीराबाई का स्वर इनसे भिन्न हैं। उन्होंने भक्तिक्षेत्र में व्याप्त पुरुषवर्चस्ववादी मान्यताओं के साथ ही रूढ़िवादी बन्धनों एवं मर्यादाओं को तोड़ दिया। इसीलिए उनका विद्रोही रूप कबीर से मिलता है। कबीर ने भी 'अनुभव' को महत्व दिया तो मीराबाई ने भी। इस साम्यता के कारण ही मीराबाई में निर्गुण प्रभाव भी खोजे गये, जिसे नजरअन्दाज़ भी नहीं किया जा सकता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन के बड़े कवियों - कबीर, जायसी, सूर, तुलसी - की तरह ही मीरा की भक्ति का अपना विशिष्ट स्वर है, जो सम्प्रदाय निरपेक्ष है। वे न तो पुष्टिमार्गीय हैं, न निम्बार्क या विश्नोई सम्प्रदाय, सखी, हरिदास, राधास्वामी सम्प्रदाय की अनुयायी। वे दक्षिण के 'पाँचरात्र तंत्र' एवं बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय से प्रभावित हो सकती है, किन्तु उनकी भक्ति श्रीमद्भागवत में वर्णित माधुर्य भक्ति की एक विशिष्ट परम्परा है।

नारद भक्ति सूत्र के आधार पर देखें तो मीरा की भक्ति प्रेमरूपा भक्ति है। वे गिरधरमय हैं। वे अपने 'गिरधर' के 'बीड़द का गान' बड़ी श्रद्धा, तन्मयता एवं भाव विभोरता के साथ करती हैं। वे एक ओर कहती हैं - 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर घर वर पायो पूरो' तो दूसरी ओर कहती हैं - 'पारबिरम पूरण पुरसोतम व्यापक रूप लखाऊँ।' वे पूरी तरह पतिव्रता हैं - 'मैं पतिभरता पीव की हो, मोल लेई चेरी'। इसीलिए प्रतिकूल परिस्थिति में इष्टदेव के प्रति उनका अनुराग कम नहीं होता है बल्कि बढ़ता ही जाता है।

बालपन ते मीराँ कीनी। गिरधर लाल मीताई।।
सो तो अब छूटत नांहि क्यूँ हो। लगन लगी बुरी भाई।।

क्योंकि मीरा के प्रभु अविनासी हैं, दुःख समाप्त कर देने वाले हैं, सर्वशक्ति सम्पन्न ऐसे प्रभु हैं जिनका ध्यान ब्रह्मा और विष्णु भी करते हैं। मीरा के प्रभु अपूर्व सौन्दर्यशाली, गोवरधन धारण करने वाले हैं, मोर मुकट एवं पीताम्बर धारण करने वाले हैं -

जमुना की नीकट बजाई बंसी
जीव जेत जल थल के मोहे और मोहे वन के तपसी।।
सुर नर मुनी मोह लिए हो खुल गए ताल हसे तपसी।।
मीरा के प्रभु हरी अबीनासी, चरण कंवल में प्राणबसी।।

9.5.2 साधना और दर्शन:

मीरा सगुणोपासक भक्त कवि हैं। उनके प्रभु गिरधर नागर हैं, जिनकी भव्य एवं मुग्ध कर देने वाली छवि को मीरा बार-बार निहारती रहती है - 'पिया म्हारे नैणा आगे रहीज्यो जी।' उनमें निर्गुण तत्त्व है, किन्तु वे निर्गुणमार्गी नहीं हैं, सगुण मार्गी हैं, क्योंकि वे श्रीमद्भागवत की तरह अवतार एवं लीला में विश्वास करती हैं और कहती हैं कि -

जनम जनम को पति परमेसुर। जां मैं रच्यौ है जग सारो
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। जीवन प्रान हमारौ।।

इसलिए वे 'धूपदीप' से पूजा करती हैं और प्रतिदिन चरणामृत पीती हैं -'चरणामृत को नेम हमारौ'। भालतिलक एवं तुलसी की माला को भी महत्वपूर्ण मानती हैं - 'भाल तिलक तुलछा की माला, फैरत कौ नटै'। आराधना के क्षेत्र में साधु संगत एवं कीर्तन की महत्वपूर्ण मानती हैं - 'साधु संगत अरु भजन करत मोही देत क्लेस माहाई'। तमाम क्लेश के बावजूद वे चैतन्य महाप्रभु की तरह **'पग घुँघरू बाँध'** नाच उठती हैं और एकनिष्ठ भाव से 'गिरधर नगार' के रंग में रँग जाती हैं - **पायोजी म्हें तो स्याम रतन धन पायो।'** किन्तु उनकी साधना कठिन है, उनका मार्ग दुर्गम है। उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर 'गिरधर नागर' को प्राप्त किया है - **'मीराँ कहैं प्रभु गिरधर नागर लीयौ छै सीस सटै।'** उन्हें प्रभु स्मरण के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उनकी भक्ति अनन्य है - **'हरि जी मेरा म्है हरि जी की जगत करौ क्यूँ हासी'।** हरि, राम, कृष्ण के प्रति उनका भाव अभेद है।

मीरा वैष्णव भक्तों और दक्षिण के आलवार भक्तों की तरह ही भक्ति को सर्वोपरि महत्व देती हैं और इस भक्ति के लिए नाम महिमा, गुण स्मरण, स्तुति, सत्संग, वैराग्य, श्री कृष्ण की विविध लीलाओं के गान, शरणागति भाव को महत्वपूर्ण मानती हैं। नवना भक्ति अपने भव्य रूप में मीरा के पदों में व्याप्त है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन-वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन के द्वारा वे माधुर्य भाव से 'गिरधर' के भावलोक में रहती है - 'पिया मोही आरत तेरी।' राधा को सौत के रूप में याद करती हैं तो वैष्णव एवं आलवार भक्तों की तरह ही गुरू की महिमा को बार-बार रेखांकित करती हैं, किन्तु मीरा के गुरु स्वयं आराध्यदेव गिरधर नागर ही हैं।

9.5.3 प्रेम और सौन्दर्य:

सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है - अपने आराध्य के साथ व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति। कबीर ने अपने को बहुरिया' माना, सूर ने 'गोपी' माना, तो आंडाल भी अपने को श्रीरंग की पत्नी समझती थीं। अक्क महादेवी भी शिव की उपासना दाम्पत्य भाव से करती हैं। मीराबाई भी साँवरे गिरधर कृष्ण को अपना पति मानती है और उनके रूप पर मुग्ध हैं - 'गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।' दरअसल अन्य कृष्ण भक्त कवियों की तरह ही मीरा का प्रेम कृष्ण के रूप माधुर्य की देन है। यह रूप माधुर्य मीरा के एक-एक रोम में बस गया है। इसीलिए वे कहती हैं 'पिया बिन सूनो है म्हारो देस' क्योंकि उनकी आँखों में तो गिरधर का रूप बसा है - 'माई री! म्हारे नेणा बाण पड़ी।' इसीलिए सुध बुध के साथ, पूरी राग चेतना के साथ अपने पति गिरधर को रिझाना चाहती है और इन्हें किसी की भी परवाह नहीं है -

म्हाँ गिरधर आगे नाचाँ री।
नाच नाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीत पुरातन जाँचाँ री।
स्याम प्रीत री बाँध घुंघरिया, मोहन आगे नाँचाँ री।
लोक लाज कुल री मरजादा जग माँ, नेक ना राखाँ रीं
प्रीतम पल छिन ना विसरावाँ, मीरा हरि रंग राची री।

सूर की गोपियाँ भी कृष्ण से प्रेम करती हैं, किन्तु मीरा का प्रेम अलंकरण की चेतना से मुक्त सहज मन का प्रेम है। मीरा पूरे लोक को अपने प्रेम में भागीदार बनाना चाहती हैं। उनकी इच्छा है कि सभी उनकी तरह गिरधर की छवि को अपनी आँखों में भर लें - 'प्रीतम पल छण णा विसरावां'। यहाँ पूरा लोक मीरा के कीर्तन में शामिल है क्योंकि मीरा सबकी आँखों से कृष्ण को देख रही है। इसीलिए वे कृष्णमय हैं - 'माई! म्है तो साँवरे रंग राची।'

9.5.4 उत्कट विरहानुभूति एवं वेदना का स्वर:

शिव कुमार मिश्र ने लिखा है कि, 'मीरा की कविता प्रेमा-भक्ति की कविता है, ऐसी कविता है जो 'जग की कविताई' से परे है। (भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 127) ब्रजनाथ ने जो बात घनानन्द की कविता के लिए कही थी वह मीरा की कविता के लिए भी सोलहो आने सच है -

जग की कविताई के धोखे रहें, ह्याँ प्रवीननि की मति जात जकी।
समुझै कविता घन आनन्द की, हिम आँखिन नेह की पीर तकी।।

इतना ही नहीं आचार्य शुक्ल ने भी जिस तरह घनानन्द को 'प्रेम मार्ग के धीर-गंभीर पथिक' के रूप में याद किया था, उसी तरह मीरा को भी उनके प्रेम की गम्भीरता, समर्पण, एकनिष्ठ विश्वास के कारण भक्तिकाल में अलग से रेखांकित किया जा सकता है। उनके यहाँ न

तो क्षोभ है ओर न ही आक्रोश, न प्रिय से मिल पाने की कुंठा, बल्कि गहरी तन्मयता है, स्वच्छन्द मनोभूमि है -

नाचण लागी तद घूंघट कैसो, लाक लाज तिणका ज्यूं तोर्यौ
नेकी बदी हूं सिर पर धारी, मन हस्ती अंकुश दे मोर्यौ
प्रकट निसांण बजाय चली म्हे, राणा राव सकल जग जोर्यौ
मीरा सकल घणी कै सरणे, कहा, भूपति मुख तोर्यो

और यह प्रेमानुभूति सघन एवं सान्द्र है। तभी तो 'प्रेम तृष्णा' की लौ कभी यहाँ मद्धिम नहीं होती। वे कृष्ण की रूपमाधुरी पर मुग्ध हैं, उनकी छवि को अनेक तरह से अपने भीतर कैद कर लेना चाहती है -

आली री मेरे नयनन बान पड़ी
चित्त चढ़ी मेरै माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाड़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोक कहैं बिगड़ी।

यहाँ सौन्दर्य एवं अनुभूति में कोई द्वैत नहीं है। उन्होंने साहस के साथ कहा 'जाके सिर मोर मुकट मेरौ पति सोई' क्योंकि जीवन की कठोर, निर्मम स्मृतियाँ प्रेमानुभूतियों में ढल गयी हैं। जीवन सिंह का कथन है, 'प्रेम की अनुभूति पर स्त्री-जीवन के वैषम्य की गहरी पीड़ा का रंग मीरा की कविता में इस तरह चढ़ा हुआ है कि उनका प्रेम पीड़ा में बदल जाता है और पीड़ा प्रेम में।' (मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन, पृष्ठ 249) उनके महत्वपूर्ण पद 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' में इसकी व्यंजना है। उनका प्रेम निडर एवं जीवन दृष्टि की स्पष्टता से परिपूर्ण होने के कारण आँसुओं के जल से आप्लावित है। कबीर, जायसी, सूर के यहाँ भी आसुओं की धार है, किन्तु भक्ति आन्दोलन में मीरा इकलौती है, जिन्होंने आँसुओं से सींच-सींचकर प्रेमबेलि बोई है। इसीलिए संयोगमय होते हुए भी संयोग वृंगार के प्रगल्भ चित्र यहाँ नहीं है - 'स्याम प्रीत री बांध घुंघर या मोहण म्हारो सांच्यारी' फिर भी मीरा प्रेम की ऐसी दीवानी के रूप में सामने आती है, जो सदेव विरहिणी ही रहना चाहती है। भक्ति आन्दोलन में राबिया, आंडाल, अक्क महादेवी, जनाबाई, कान्होपावा आदि के समसक्ष मीरा का तेवर विशिष्ट है। विरह ही उनकी काव्यानुभूति, जीवनानुभूति है -

विरह दरद उरि अंतर मांही, हरि विणि सब सुख कोने हो।'

किन्तु मीरा के प्रेम में स्वाभाविक विरह की उष्णता ही ज्यादा है। यह ऐसा विरह है जो सांसारिक एवं भौतिक अनुभव से निकला है, किन्तु अपनी निष्पत्ति में यह आध्यात्मिक भी है। इस विरहानुभूति में भी मीरा में कहीं विछोह नहीं है। यद्यपि कि वे अन्य विरहणियों की तरह ही कृष्ण की निरन्तर प्रतीक्षा में, हैं, 'अबोलणा में अवधी बीती, काहे की कुसललात' और वे यह भी कहती हैं कि 'जो मैं जाणती रे, प्रीत किया दुख होय/नगर ढिंढोरा फेरती, प्रीत करौ मत कोय'

किन्तु वे 'अमर चुड़ला' पहन कर सदा सुहागिन रहना चाहती हैं और उनका यह दर्द आज भी करोड़ो कंठों में जीवित है -

हेरी म्हाँ तो दरद दिवाणी म्हाराँ दरद णा जाण्याँ कोय।
घायड़ री गति घायड़ जाण्यां हिबड़ी अगण संजोय,

डॉ0 शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा की ये दरद पगी पंक्तियाँ, जिसे हमने 'जग की कविताई' कहा है, उसकी कसौटी पर निरी सामान्य साबित होती हैं। न कोई वाग्वैदग्ध्य, न कोई अलंकार-सज्जा और न कोई दूरवर्ती शास्त्रीय व्यंजना। यहाँ कविता सीधे हृदय की आर्त्त पुकार बनकर सामने आई है।' फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन करें तो प्रौढ़ पूर्वराग की दस दशाओं-लालसा, उद्वेग, जागरण, तनाव, जड़िमा, व्यग्रता, व्याधि, उल्लास, मोह (मूर्च्छा), मरण-के बीज तत्त्व यहाँ विद्यमान हैं। इसके साथ ही समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ - अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृत्यु - भी खोजी जा सकती है, इनकी शास्त्रीय व्यंजनाओं को भी रेखांकित किया जा सकता है, किन्तु हृदयस्थ गिरधर तो सदेव मीरा की आँखों में बसे हैं।

9.5.5 प्रतिरोध का स्वर एवं स्त्री स्वातंत्र्य

डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने मीराबाई की काव्यानुभूति के बहाने सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'भक्त कवि भावना की साधना करते थे। उनकी साधना मुख्यतः व्यक्तिगत थी। लेकिन चूँकि वे अपनी निष्ठा के अनुसार आचरण भी करते थे इसलिए ह्रासोन्मुखी रूढ़ियाँ उनका विरोध करती थीं। भक्त कवि इन विरोधों से टक्कर लेते थे।' (मीरा का काव्य, पृष्ठ 88) मीरा ने पद-पद पर सामंतवादी सत्ता को जो टक्कर दी है उससे पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था की चूलें हिलती हुई दिखाई देती है। शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा अपने माध्यम से, मध्यकालीन समाज में घुटती-कराहती, नाना प्रकार के सामाजिक अत्याचारों और पारिवारिक प्रताड़नाओं को सहती आम नारी का भी अहसास कराती हैं, उसके दुःख और उसकी कसक को भी अपने माध्यम से वाणी देती हैं, उस समाज को नंगा करती हैं जहाँ नारी इतनी परवश और इतनी असहाय है कि उसका समाज, समाज के बनाए नियमों के खिलाफ, उठा एक पग भी, उसे भ्रष्ट, पतिता ओर 'बिगड़ी' करार देने के लिए पर्याप्त है, भले ही उसके इस प्रयास के पीछे उसके अन्तर्मन की कितनी ही गहरी, कितनी ही उदात्त और कितनी ही पवित्र प्रेरणा क्यों न हो।' (भक्ति-आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 127)

मैंनेजर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है कि कबीर, जाससी, सूर के सामने तो मात्र भाव जगत की चुनौतियाँ हैं, किन्तु मीरा के लिए तो भाव जगत से ज्यादा इस लोक की, भौतिक जगत की, सामाजिक जीवन की चुनौतियाँ हैं। मीरा के समक्ष पुरुषवर्चस्ववादी सामाजिक जीवन भी है तो आध्यात्मिक जीवन भी। उन्होंने दोनों की आतंककारी एवं भयावह स्थितियों से जो संघर्ष किया है उसका साक्षी उनका जीवन भी है, काव्य भी और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज भी। मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा का विद्रोह अंधे के हाथ लगा बटेर नहीं है। वे

अपने संघर्ष की परिस्थितियों के बारे में पूरी तरह सजग हैं। विरोधी शक्तियों के खूंखार स्वभाव और अपनी वास्तविक स्थिति की पहचान के बाद ही उन्होंने कहा है कि, 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनो, ज्यों रण माँही सूरो।'

मीरा की यह चुनौती अर्थपूर्ण एवं धारदार तो है ही उसमें सजग एवं निर्भय स्त्री स्वर भी है, जिसमें आक्रोश की अनुगूंज है। अपनी अस्मिता एवं स्वतंत्रता के साथ ही स्त्री जाति की स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता की कामना है तथा इसकी प्राप्ति के लिए विद्रोह भी है -

पद घूँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
लोग कहे मीराँ भई बावरी सास केवे कुलनासी रे।
विषरो प्यालो राणोजी भेज्यो, पीवत मीराँ हाँसी रे।
तन मन वाराँ हरि चरणां में, दरसण इमरित पास्याँ रे।
मीराँ रा प्रभु गिरधर नागर रावली सरणाँ आस्याँ रे।।

9.6 शिल्प विधान

मीरा के पद उनके निर्मल-निश्छल तन-मन उद्गार हैं और इसके लिए मीरा की किसी कला की जरूरत भी नहीं है न ही किसी उक्ति वैचित्र्य की जरूरत है और न किसी अलंकार सज्जा या वक्रोक्ति की, या शास्त्रीय व्यंजना की। लोक भाषा का जो समृद्ध एवं बहुआयामी परिवेश है, वह मीरा के व्यापक जीवनानुभव की ओर संकेत करता है। उनके यहाँ लोकमान्यताओं के साथ ही लोक भाषा एवं लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। किन्तु मुख्य रूप से इनके पदों की भाषा ब्रजमिश्रित राजस्थानी है। कहीं-कहीं गुजराती का भी प्रभाव है। श्री नरोत्तमदास ने भी इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'मीराबाई की कविता की भाषा राजस्थानी है, जो पश्चिमी हिन्दी का एक प्रधान विभाग है। पंजाबी, खड़ी बोली, पूरबी आदि का आभास भी कई स्थानों पर मिलता है।' इसका मुख्य कारण मीरा की साधुसंगत एवं तीर्थाटन भी है और भक्ति आन्दोलन का राष्ट्रीय तथा लोकवादी चरित्र भी। फिर भी यह स्पष्ट है कि 'मीरा के पद उनके भावविभोर अन्तःकरण से स्वतः मिश्रित अभिव्यक्ति थे जो मीरा की अपनी भाषा में व्यक्त हुए। मीरा के पद एक भक्त हृदय के निश्छल, निर्भीक और प्रेमपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति हैं, जो अनायास उच्चरित हुए हैं।' (ग्रन्थावली-1, कल्याण सिंह शेखावत, पृष्ठ 71)। देवरो, पुरबली, राड़-पछाड़, घर धन्धों, पीहरियों, सासरो, पुरसोतम, विरस, बीड़द, जासी, पिछतासी, आदि शब्द इसके प्रमाण है। इसके साथ ही सेल, वाण, राजपाट, नृप, राजा, राव, अमराव जैसे युद्ध सम्बन्धी शब्दावली भी हैं। इतना ही नहीं वे अपने कृष्ण को भी अनेक नामों से सम्बोधित करती हैं।

वस्तुतः मीरा के पद गीत ही हैं, जो सहज, सात्विक, निश्छल भक्त मन के स्वतः प्रसूत उद्गार हैं। अतः यहाँ पाण्डित्यपूर्ण शब्द विन्यास, विद्वतापूर्ण आलंकारिक छन्द श्रृंखला खोजना बेमानी है, क्योंकि यह स्वच्छन्द हृदय का सहज प्रकाशन है। गीति सृष्टि का सभी प्रक्रियाएं - आत्मानुभूति, भाव जागृति, मनोवेगों का उद्वेलन, भावदशा की चरम परिणति, भावयोग का

शब्द योग से समन्वय, भावानुरूप शब्द-व्यंजना, भावदशा का उतार-चढ़ाव, अनुभूति की संकलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अन्त आदि विद्यमान हैं। मीरा के पदों में स्वानुभूति के सत्योद्गारों की लम्बी वृंखला है, जीवनसत्य एवं काव्य साधना का अभेदत्व दिखाई देता है। अन्य भक्त कवियों में जहाँ साम्प्रदायिकता और दार्शनिकता की उलझने हैं, वहाँ मीराबाई में बौद्धिकता के लिए कोई जगह नहीं है, बल्कि भाव प्रवणता ही सर्वत्र विद्यमान है। मीरा के पदों में सरल सुलभ गेयता, संगीत तत्व, मनःस्थिति की एकनिष्ठता लोकानुरूप्ता है, जिसके कारण कहा जा सकता है कि यह आत्मदान की कविता है।

मीरा के पदों के साथ न तो छन्दों के प्रकार का और न ही रागारागनियों का उल्लेख मिलता है, इसका मुख्य कारण इनकी भाव-प्रवणता एवं सहजता है। इसीलिए न तो छन्दशास्त्र और न ही संगीत शास्त्र या अलंकारशास्त्र की कसौटी पर इसे कसा जा सकता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि ये सहज स्वाभाविक रूप में यहाँ विद्यमान है। अलंकारों की दृष्टि से देखें तो उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति, अर्थान्तरन्यास, विभावना, श्लेष, स्वभावोक्ति अलंकार विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

सत्य/असत्य बताइए –

1. मीराबाई सगुणोपासक भकत हैं।
2. मीरा ने कृष्ण की पति रूप में उपासना की।
3. मीरा का प्रेम वियोग से ज्यादा संबंधित है।
4. मीरा की कविता पर राजस्थानी, गुजराती, ब्रज इत्यादि भाषाओं का प्रभाव है। मीराबाई की रचना प्रबन्ध रूप में है।

9.7 मीराबाई की कविता का मूलपाठ

मण थे परस परि रे चरण ।।टेक।।
सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
इण चरण प्रह्लाद परस्याँ, इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटल करस्याँ, सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्याँ, नखसिखाँ गिरि भरण।
इण चरण कालियाँ णाथ्याँ, गोपी लीला करण।
इणा चरण गोबरधन धर्याँ, गरब मधवा हरण।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, अगम तारण तरण ।।1।।

हे मा बड़ी-बड़ी अंखियन वारो,
साँवरो मो तन हेरत हँसिके ।।टेक।।

भौंह कमान बान बाँके लोचन, मारत हियरे कसिके ।
जतन करो जन्तर लिखी बाँधों, ओखद लाऊँ घँसिके।
ज्यों तोकों कछु और बिथा हो, नाहिन मेरो बसिके।
कौन जतन करों मोरी आली, चन्दन लाऊँ घसिके।
जन्तर-मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरति बसिके।
साँवरी सूरत आन मिलावो ठाढ़ी रहूँ मैं हँसिके।
रैजा रेजा भयो करेजा अन्दर देखो धँसिके।
मीरा तो गिरधर बिन देखे, कैसे रहे घर बसिके।।2।।

निपट बंकट छब अँटके।
म्हारे णेणा निपट बंकठ छब अँटके ।।टेक।।
देख्याँ रूप मदन मोहन री, पियत पियूखन मटके।
बारिज भवाँ अलक मातवारी, णेणे रूप रस अँटके।
टेढ्या कट टेढ़े करि मुरली, टेढ्या पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर नटके।।3।।

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसरा णाँ कूवाँ।
दूसराँ णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।।टेक।।
भाया छाँड्याँ, बन्धा छाँड्याँ सँगा सूयाँ।
साधाँ ढिग बैठ बैठ, लोक लाज खूयाँ।
भगत देख्याँ राजी ह्यायाँ, जग देख्याँ रूयाँ।।4।।

माई साँवरे रंग राची ।।टेक।।
साज सिंगार बाँध पग घूँघर, लोकलाज तज नाची।
गयाँ कुमत लयाँ साधाँ संगत श्याम प्रीत जग साँची।
गायाँ गायाँ हरि गुण निसदिन, काल ब्याल री बाँची।
स्यामा विणा जग खाराँ लागाँ, जगरी वाताँ काँची।
मीरा सिरि गिरधर नट नागर भगति रसीली जाँची।।5।।

माई री म्हा लियाँ गोविन्दाँ मोल।।टेक।।
थे कह्याँ छाणे म्हाँ काँचोड्डे लियाँ बजन्ता ढोल।
थे कह्याँ मुँहौधो म्हाँ कह्याँ सस्तो, लिया री तराजाँ तोल।

तण वाराँ म्हाँ जीवन वाराँ, वाराँ अमोलक मोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्याँ पूरब जणम की कोल।।6।।

राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ बैर।।टेक।।
थे तो राणा जी म्हाँने इसड़ा लागौ ज्यों ब्रच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागे, त्याग्यो थाँरो बसनों सहर।
कागज टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर।।7।।

पग बाँध घूँघर्याँ पाच्याँरी।।टेक।।
लोक कह्याँ मीरा बावरी, सासु कह्याँ कुलनासाँ री ।
विख रो प्यालो राणा भेज्याँ, पीवाँ मीरा हाँसाँ री।
तण मण वार्याँ हरि चरणामाँ दरसण अमरित प्यास्याँ री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणाँ आस्याँ री।।8।।

अखयाँ तरशा दरसण प्यासी ।
मग जोवाँ दिण बीताँ सजणी, णौण पड्या दुखरासी।
डारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुणाया री गासी।
कड़वा बोल लोक जग बोल्या, करस्याँ म्हारी हाँसी।
मीराँ हरि के हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी।।9।।

साँवरे मार्या तीर।
री म्हारा पार निकर गयाँ, सावेर मार्या तीर।।टेक।।
विरह अनल लागाँ उर अन्तरि, व्याकुल म्हाराँ सरीर।
चंचल चित चल्या णा चाला, बाँध्या प्रेम जंजीर।
क्या जाणा म्हारो प्रीतमि प्यारो, क्या जाणा म्हा पीर।
म्हारो काई णा बस सजणी, नैण झरयाँ दोऊ नीर।
मीराँ रो प्रभु थे मिलिया विणि, प्राण धरत णा धीर।।10।।

9.8 सारांश

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप कृष्णभक्ति काव्य परम्परा में कृष्ण के नये चरित्र एवं मीरा की कविता की विलक्षणता को समझ गए होंगे। वस्तुतः मीरा की कविता में न तो कोई सम्प्रदायगत निष्ठा है और न ही लोक-शास्त्र के समर्थन की आकांक्षा, बल्कि वह निर्भय सात्विक एवं रागसिक्त मन की ऐसी करूण किन्तु प्रतिरोधी पुकार है, जहाँ दर्द ही दवा है। वह समर्पण, आत्मदान, के साथ ही स्त्री स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाली कविता है, जिसका प्रस्थान

बिन्दु भले ही अध्यात्म हो, किन्तु अपनी परणति में सामाजिक-सांस्कृतिक चिन्ताओं से लैस है। शिवकुमार मिश्र के शब्दों में कहूँ तो 'मीरा समूचे भक्ति काल में अकेली नारी भक्त हैं जिन्होंने अपनी आत्म निवेदनपूर्ण कविता में अपनी भक्ति और प्रेम के माध्यम से, एक पूरी की पूरी समाज-व्यवस्था की असहिष्णु और अमानवीय मानसिकता को, उसकी भेदभावपूर्ण रीति-नीति को, उसके दोमुँहे चेहरे को बेनकाब किया है।' (भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य, पृष्ठ 131) यहाँ कोई दार्शनिक वाद-विवाद नहीं है, फिर भी भक्ति का लोकवादी एवं सामंतवाद विरोधी चरित्र दिखाई देता है, जो मानवधर्म को सबसे बड़ा मूल्य मानता है। यहाँ अनुभूति की तन्मयता के साथ ही संगीतात्मक चेतना भी है और लयात्मक सौन्दर्य भी।

9.9 शब्दावली

- सगुणोपासना - ईश्वर की मूर्ति रूप में, प्रत्यक्ष रूप में उपासना करना।
- निर्गुणपासना - ईश्वर की निराकार रूप की उपासना करना।
- मार्धुय भक्ति - ईश्वर को पति रूप में पाने की इच्छा।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. राजस्थान
2. 1498 ई.
3. द्वारिका
4. कृष्णभक्ति
5. मार्धुय

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

3. भक्ति आन्दोलन एवं सूरदास का काव्य - डॉ0 मैनेजर पाण्डेय
4. भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य - शिवकुमार मिश्र
5. भक्ति काव्य का समाजशास्त्र - डॉ0 प्रेमशंकर
6. भारतीय चिन्तन परम्परा - के0 दामोदरन
7. मीरा ग्रन्थावली, भाग एक एवं दो - कल्याण सिंह शेखावत
8. मीरा का काव्य - डॉ0 भगवानदास तिवारी
9. मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन - सम्पादक पल्लव
10. मीरा का काव्य - डॉ0 विश्वनराथ त्रिपाठी
11. मीराबाई की पदावली - सं0 परशुराम चतुर्वेदी
12. मध्यकालीइन प्रेम-साधना - परशुराम चतुर्वेदी
13. मध्यकालीन काव्य संचयन - दीपक प्रकाश त्यागी ।

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय भक्ति परम्परा में मीरा के कृष्ण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 'मीराबाई के व्यक्तित्व' पर एक निबंध लिखिए।
3. मीराबाई के काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. 'मीराबाई कविता सामंतवाद विरोधी कविता है।' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में मीराबाई के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
5. मीराबाई की भक्ति भावना एवं प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 गुरुनानक : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 हिन्दी भक्ति आन्दोलन, निर्गुण संत काव्य परम्परा एवं गुरुनानक
10.4 गुरुनानक: जीवन परिचय तथा रचनाएँ
10.5 काव्यगत विशेषताएँ
10.6 पाठ एवं व्याख्या
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

गुरुनानक देव सिक्ख धर्म के प्रथम गुरु हैं। वे हिन्दी निर्गुण संतकाव्य एवं पंजाबी भक्तिकाव्य परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उन्होंने पंजाब में धर्म-संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में एक नयी परम्परा का प्रवर्तन किया, जिसने हिन्दी भक्ति काव्य एवं सम्पूर्ण पंजाबी साहित्य को नयी दिशाएं दी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'मध्यकाल के निर्गुण मार्गी सन्तों में गुरुनानक का ही व्यक्तित्व शरच्चन्द्र के समान स्निग्ध, शामक और आह्लादजनक है।' क्योंकि वे रैदास की तरह ही विनम्र हैं, कबीर की तरह आडम्बरों पर चोट करते हैं, किन्तु आक्रोश उनमें नहीं है।' आचार्य द्विवेदी का यह कथन प्रासंगिक है, 'कई सन्तों ने कस-कसके चोटें मारी, व्यंग्य वाण छोड़े, तर्क की छुरी चलाई, पर महान गुरु नानकदेव ने सुधालेप का काम किया। यह आश्चर्य की बात है कि विचार और आचार की दुनिया में इतनी बड़ी क्रान्ति ले आने वाला, किसी का दिल दुखाए बिना किसी पर आघात किए बिना, कुसंस्कारों को छिन्न करने की शक्ति रखने वाला, नई संजीवनी धारा से प्राणिमात्र को उल्लसित करने वाला यह संत मध्यकाल की ज्योतिष्क-मंडली में अपनी निराली शोभा से शरत् पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की तरह ही ज्योतिष्मान् है।'

10.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप हिन्दी निर्गुण संत काव्य परम्परा के विशिष्ट कवि गुरुनानक का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- गुरुनानक के जीवन एवं रचनाओं के विषय में जान सकेंगे।
- हिन्दी निर्गुण संत काव्य परम्परा में गुरुनानक की भूमिका बता सकेंगे।
- गुरुनानक के साहित्य की विशेषताएँ बता सकेगें।
- गुरुनानक के साहित्य के अभिव्यंजना पक्ष के विषय में जान सकेंगे।
- गुरुनानक की कविताओं को पढ़कर उनकी चेतना से परिचित हो सकेंगे।

10.3 भक्ति आन्दोलन हिन्दी निर्गुण संतकाव्य परम्परा एवं गुरुनानक

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन जिसका प्रारम्भ दक्षिण भारत से हुआ था, वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन है। रामविलास शर्मा ने इसे 'लोक जागरण' कहा और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'धर्म और मानवता की एक नयी चेतना के रूप' में रेखांकित किया। डॉ0 शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'इस भक्ति आन्दोलन में पहली बार प्रस्थानत्रयी हो हाशिये पर डालते हुए सन्तों और भक्तों ने लोकमन में रची और पढ़ी भक्ति को अपनी रचनाओं में उभारा और अंकित किया।' इसीलिए इन्होंने नये छन्द एवं नयी भाषा, जो लोक की सम्पत्ति थी उसे अपनी संवेदना का सहचर बनाया। इसमें हिन्दी भाषी समाज का जीवन संघर्ष है और सामाजिक संघर्ष भी, किन्तु सभी रचनाकारों के रंग और स्वर भिन्न भिन्न होते हुए भी मनुष्यता की चिन्ता सभी के यहाँ हैं। मैनेजर पाण्डेय ने एक बड़ी अर्थपूर्ण टिप्पणी की है, 'भक्तिकाव्य में उस समय के भारतीय समाज की वास्तविकताएँ हैं और उनकी आलोचना भी है, सामाजिक व्यवस्थाओं के चित्र हैं और व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने की आकांक्षा भी है, सामंती सत्ता के अनेक रूप हैं और उनके आतंक के विरूद्ध निर्भयता भी है। उसमें कही शास्त्र की रूढ़ियों के अस्वीकार की घोषणा है, कहीं लोक के बंधनों की उपेक्षा का साहस है तो कहीं शास्त्र और लोक के बीच समन्वय का प्रयास भी है। उसमें उस काल के सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति है, कहीं अन्तर्विरोधों के बीच संघर्ष की चेतना अधिक है तो कहीं समन्वय की कोशिश।' इस प्रकार आप कह सकते हैं कि भक्ति आन्दोलन अपने समय की सांस्कृतिक परिस्थितियों की अनिवार्य देन हैं और जरूरत भी। इस भक्ति आन्दोलन की कुछ मूल आस्थाएं, चिन्ताएं हैं-

1. धार्मिक विचारों की असमानता के बावजूद जनता की एकता स्वीकार करना।

2. ईश्वर के समक्ष सबकी समानता स्वीकार करना।

3. जातिप्रथा की संकीर्णता का विरोध एवं जाति की श्रेष्ठता को अस्वीकार करना।

4. आचरण की पवित्रता पर बल।

5. इस विचार को स्थापित करना कि मनुष्य एवं ईश्वर के बीच तादात्म्य संभव है और तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर है।

6. भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है।

7. बाह्याचारों, कर्मकाण्डों आदि की निंदा एवं भर्त्सना।

8. मनुष्य सत्य सर्वोपरि है, इसलिए जातिगत भेदभाव धार्मिक श्रेष्ठता का भाव निरर्थक है।

स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन एक सांस्कृतिक जागरण है, जो उत्तर भारत में रामानन्द के साथ शुरू होता है। इस भक्ति आन्दोलन की निम्नलिखित धाराएं हैं- **हिन्दी भक्तिकाव्य** - (क) निर्गुण भक्तिकाव्य (ख) सगुण भक्तिकाव्य

निर्गुण भक्तिकाव्य - (क) ज्ञानाश्रयी शाखा (ख) प्रेमाश्रयी शाखा

सगुण भक्तिकाव्य - **(क)** कृष्णभक्ति शाखा (ख) रामभक्ति शाखा

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् सत्वादि गुणों (सत्व, रज, तम) से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवि निर्गुण धारा के कवि हैं। इन्होंने ज्ञान को ही ब्रह्म प्राप्ति का साधन माना, इसीलिए ये ज्ञान मार्गी भी हैं और यहाँ ज्ञान का अर्थ 'साधारण इन्द्रिय जन्य ज्ञान' अथवा 'बौद्धिक तर्क-वितर्क से प्राप्त गूढ़ दार्शनिक ज्ञान' नहीं है, बल्कि ज्ञान यहाँ अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी प्रत्यक्ष साधन से पैदा होता है। इसीलिए इसे 'सहजज्ञान' भी कहा गया है। कबीर इसे 'ब्रह्मगियान' कहते हैं- 'अब मैं पाइबो रे ब्रह्म गियान।/सहज समाधैं सुख मैं रहिबो, कोटि कलप विश्राम।' इसीलिए नानक ने भी स्वीकार किया है- **आदि सचु जुगारि सुचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु।** निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा ने जाँति-पाँति, वर्ग और वर्ण को दीवालें ढहाते हुए भक्ति को सबके लिए सुगम बना दिया और इसमें नामदेव, कबीर, गुरुनानक, दादू दयाल, सुन्दरदास, रैदास, रज्जब आदि प्रमुख भक्त-कवि हुए किन्तु कबीर, रैदास एवं गुरुनानक की भूमिका कुछ खास कारणों से महत्वपूर्ण हैं। इन्हें एवं इस धारा के कवियों को संतकवि भी कहते हैं। सामान्यतः संत का अर्थ है- सदाचारी, पवित्रात्मा व्यक्ति। विशिष्ट अर्थ में संत उस व्यक्ति को कहते हैं, जिन्होंने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए निःस्वार्थी भाव से लोक कल्याण में संलग्न हो। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है, 'संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत रूप परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ सद्रूप हो, जो सत् स्वरूप, नित्य, सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो वही संत है।'

किन्तु संतकवि धर्म, साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं करते बल्कि जनभाषा में इसके मर्म को लोक से परिचित कराते हैं, इसीलिए इनके विचार निजी अनुभूतियों पर आधारित है, 'आँखिन देखी' यहाँ प्रमाण हैं। तीखापन है, विद्रोह है, आक्रोश है तो रैदास, गुरुनानक के यहाँ विनम्रता है, निरीहता है आक्रोश एवं प्रखरता नहीं है। गुरुनानक तो जीवन की सार्थकता भगवान के निरन्तर ध्यान एवं नाम स्मरण में ही स्वीकार करते हैं-

रैण गँवाई सोई कै, दिवसु गवाँइया खाइ। हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ।।

10.4 गुरु नानक: जीवन परिचय तथा रचनाएँ

गुरु नानक का जन्म एक उदार सहिष्णु परिवार में 15 अप्रैल 1469 (सम्वत् 1526 वि0 वैशाख सदी तृतीया) को तलवण्डी (पाकिस्तान) में हुआ था, जिसे इस समय ननकाना साहिब भी कहा जाता है किन्तु काफी अर्से से उनकी जन्म तिथि का उत्सव कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है, जो युक्तिसंगत ही है एवं गुरुनानक के निर्मल एवं पवित्र व्यक्तित्व के कारण अर्थपूर्ण भी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है- 'उनकी आविर्भाव तिथि इस पूर्णिमा को मानने के संगत कारण हैं। यह केवल भक्तों की कल्पना नहीं सुचिन्तित योजना है। निर्मल आकाश में शुभ्र राजहंस की तरह भ्रमण करने वाला चन्द्रमा ही उनके व्यक्तित्व की ओर संकेत कर सकता है।' इनकी माता का नाम तृप्ता एवं पिता का नाम मेहता कल्याणदास था, किन्तु मेहता कालू के नाम से इनकी ख्याति थी। बड़ी बहिन 'नानकी' के अनुकरण पर बालक का नाम नानक रखा गया। दरअसल ये दोनो भाई बहन दो शरीर एक आत्मा ही थे। नानक की आध्यात्मिक एंव संत प्रकृति की अनुभूति सर्वप्रथम नानकी को ही हुई थी।

डॉ0 जयराम मिश्र ने अपनी किताब 'गुरु नानकदेव: जीवन एवं दर्शन' में लिखा है कि 'नानकदेव इस वसुन्धरा पर दैवी संगीत के रूप में अवतीर्ण हुए। प्रकृति में वे अल्पायु में ही रम जाते थे। अनन्त आकाश की नीलिमा, वायु के मृदुल झकोरों, सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति, जल की शीतलता और स्निग्धता तथा पृथ्वी के अलौकिक वर्णों में उन्हें दिव्य सन्देश सुनाई पड़ता। वे घण्टों अधखुली आँखों से प्रकृति के इस रूप को निहारते रह जाते, प्रकृति के माध्यम से वे भावजगत में विचरण करने लगते।' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'भारतवर्ष के अधिकतर महापुरुषों के समान गुरु नानक का जीवन चरित भी चमत्कारिक कथाओं से ढँका हुआ है। उनकी 'जनम-साखियाँ' तो बहुत मिलती हैं, परन्तु सबमें श्रद्धातिरेक के कारण चामत्कारिक कथाओं से ऐतिहासिक तथ्य ढँक गए हैं।' किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जिसे गुरु नानक के व्यक्तित्व, कृतित्व ने और भी ऊँचाई पर पहुँचा दिया। वे मनुष्य एवं ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेमी के रूप में दिखाई देते हैं। फारसी का यह शेर उनके जीवन पर अक्षरशः लागू किया जा सकता है-

आशिकाने नौ निशानी ऐ पिसर इंतजारी, बेकरारी, बेसबर
आहे-सर्दे, मुखे-जर्दे, चश्मे-तर कम खुरो, कम गुफ्तगू, ख्वाबे हराम।

अर्थात् सच्चे प्रेमियों के नौ चिह्न होते हैं- प्रियतम की प्रतीक्षा, व्यग्रता, बेसबरी, ठण्डी और लम्बी आहें, पीलामुख, अश्रुयुक्त आँखें, अल्पाहार, कम वार्तालाप, अनिद्रा।' साधुसंगत, एकान्तवास और अध्यात्म चिन्तन ही उनका जीवन था। इसीलिए 'सुलक्खनी' से विवाह एवं दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचन्द्र के होते हुए भी वे घर गृहस्थी के बंधन में नहीं बँध पाए, पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी के एक कर्मचारी के मोदी खाने में नौकरी भी की, किन्तु यह भी उन्हें सांसारिकता से बाँध नहीं पाया। कहा जाता है कि आटा तौलते समय वे एक, दो, तीन गिनते-गिनते जब 'तेरह' पर आए तो इसके पंजाबी उच्चारण 'तेरा' पर उनका ध्यान अध्यात्म की ओर चला गया 'मैं तेरा हूँ' के भाव ने उन्हें तन्मय कर दिया। हाथ से तौलते रहे किन्तु मुँह से तेरा 'तेरा' का उच्चारण रटते-रटते परमतत्व में लीन हो गये और सारा भण्डार खाली हो गया। फलतः नौकरी भी छूट गयी और वे अध्यात्म के पथ पर निकल पड़े। साधु-संगत, भ्रमण, धर्मोपदेश, अध्यात्म चिन्तन ही उनका जीवन एवं कर्म हो गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन अक्षरशः सत्य है, 'उन्हें संसार बाँध नहीं सका, पर संसार के बंधन से छुटकारा देने और दिलाने का रहस्य उन्हें अवश्य प्राप्त हो गया।' उन्होंने लिखा भी है-

दीवा बलै अँधेरा जाइ। बेद पाठ मति पापा खाइ।
उगवै सुरु न जापै चंदु जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु।
बेद पाठ संसार की कार। पढि पढि पंडित करहि बिचार।
बिनु बूझे सभ होई खुआर। नानक गुरमुखि उतरसि पार।

गुरुनानक के सत्तर वर्ष के जीवन में अनेक पड़ाव हैं-

1. जीवन के प्रथम 18 वर्ष वे अपने पैतृक कस्बे में रहते हुए शिक्षा आदि में व्यतीत किए। यह उनका अध्ययन काल है, जहाँ वे प्रकृति की विविध सत्ताओं एवं रूपों के सौन्दर्य के प्रति अनुरक्त हैं। वैसे अनेक चमत्कारिक कथाएं भी इस काल से जुड़ी हैं, जो गुरुनानक के आध्यात्मिक विकासयात्रा की ओर संकेत करती हैं।

2. 18 वर्ष की आयु में बहन नानकी के पास सुलतानपुर लोधी गए और 10 वर्ष व्यतीत किए, सौदागरी का नैतिक, सहिष्णु जीवन जीते हुए संसार के दुःखी संतप्त लोगों के दुखों को दूर करते हुए सांसारिकता से मुक्ति के राश्ते पर निकल पड़े। 'महला' की यह वाणी महत्वपूर्ण है-

हउ ढाढ़ी बेकारू कारे लाइआ।
राति दिहै कै वार घुरहु-फुरमाइआ।।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइया।
सची सिफति सालाह कपड़ा पाइआ।।
सचा अमृत नामु भोजनु आइआ।
गुरमति खाधा रजि तिनि सुख पाइआ।।

ढाढी करे पसाउ सबदु बजाइया।
ननक सचु सालहि पूरा पाइआ।। (माझ की बार)

तीसरा पड़ाव 1497 से शुरू होता है, जहाँ ज्ञान प्राप्ति एवं ज्ञान दान के लिए वे व्याकुल हो उठते हैं और एक परिव्राजक की तरह कामरूप से मक्का मदीना तक अपने गाँव के रागी मुसलमान 'मरदाना' के राग के साथ यात्रा की शुरूआत करते हैं एवं अपने जीवन का अधिकांश समय यात्रा में व्यतीत कर देते हैं। ये केवल तीर्थ यात्राएं नहीं है, बल्कि सत्य के अनुसंधान, प्रेम के प्रसार की ज्ञानमयी सतसंग यात्रा है। इनमें चार लम्बी यात्राएं प्रसिद्ध हैं, जो चार उदासियों (विचरण यात्रा) के रूप में प्रसिद्ध हैं-

(क) उनकी प्रथम यात्रा (या पहली उदासी) की अवधि 1507 से 1515 ई. तक हैं। इस यात्रा में वे लाहौर, एमनाबाद, स्यालकोट, दिल्ली, काशी, पटना, गया, असम, जगन्नाथपुरी, सोमनाथ, रामेश्वर, द्वारिका, नर्मदातट, बीकानेर, पुष्कर, दिल्ली, पानीपत, कुरुक्षेत्र आदि से होते हुए सुलतानपुर पहुँचे और दो वर्ष अपने माता पिता के साथ रहे। इस यात्रा में उन्होंने अनेक ठगों को साधु बनाया, कर्मकाण्डियों को वाह्याडम्बर की निरर्थकता समझाकर उन्हें रागात्मक भक्ति से जोड़ा तथा अनेक का हृदय परिवर्तन किया। इस यात्रा में उनके साथ मरदाना थे, जिनकी बीन पर नानक की वाणी श्रोताओं को मुग्ध कर देती थी।

(ख) दूसरी यात्रा (दूसरी उदासी) 1517 ई. से 1518 ई के बीच की है। इस यात्रा में वे सिरसा, बीकानेर, अजमेर, उज्जैन, हैदराबाद, बीदर, रामेश्वर, शिवकांची और लंका गये। इस यात्रा की समाप्ति पर वे तलवंडी आए। इस यात्रा में उनके साथ सैदो और धोबी नाम के जाट शिष्य थे।

(ग) तीसरी उदासी - तीसरी यात्रा 1518 ई. से 1521 ई. तक की है, जिसमें कश्मीर, कैलाश, मानसरोवर, भूटान, नेपाल, जम्मू, स्यालकोट होते हुए पुनः तलवंडी आए। इस यात्रा में उनके साथ नासू और शिहा नामक दो शिष्य थे। मानसरोवर में योगियों के साथ उनका सत्संग हुआ था।

(घ) चौथी उदासी - यात्रा में उन्होंने विदेशों का भी भ्रमण किया। वे पिंडदादन खाँ, डेरा गाजी खाँ, जामपुर, राजनपुर, कोट मिट्ठन, शिकारपुर, लरकाना, हैदराबाद, कराची से होते हुए बलोचिस्तान, मक्का, मदना एक हाजी के रूप में पहुँचे। यहाँ से बगदाद, ईरान, पेशावर, मुल्तान की यात्रा करते हुए अपने जन्मस्थान तलवंडी पहुँचे। इस यात्रा में अनेक मुस्लिम संतों और पंडितों से सत्संग किया और बगदाद में बहील के शाह को सिक्ख धर्म की दीक्षा दी। इन यात्राओं के अतिरिक्त एक अन्य यात्रा का भी उल्लेख मिलता है, जिसमें वे पाकपटन, कंगनपुर, कसूर, पट्टी और नारोवाल से होते हुए सैयदपुर पहुँचे थे, जहाँ बाबर ने उन्हें बंदी बना लिया था, किन्तु उनकी मीठी एवं सहज वाणी ने बाबर को पराजित कर दिया और उसने क्षमा माँगते हुए उनके साथ सभी कैदियों को आज़ाद कर दिया था। इन यात्रा वृतान्तों में अनेक चमत्कारिक प्रसंगों की भी चर्चा है, किन्तु उनका सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता, संवादधर्मिता, इस यात्रा की विशेष उपलब्धि है, जो निर्गुण संत परम्परा को नयी दिशाएं देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

का कथन है, 'उनकी वाणी की मोहकता, उनके व्यक्तित्व का आकर्षण और उनकी भगवन्निष्ठा का प्रभाव इन यात्रा-वृतान्तों से स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि परवर्ती पुस्तकों में उन्हें शास्त्रार्थी विजेता के रूप में चित्रित करने का भी प्रयास है पर यह उनकी नहीं, उस काल की श्रद्धालु जनता की मनोवृत्ति का प्रतिफलन है। गुरु नानक बहुत वाद विवाद में नहीं पड़ते थे। वे अपने पवित्र आचरण के द्वारा ही विरोधियों को सत्य का साक्षात्कार करा देते थे। कितने ही विरोधियों ने जो उनके चरणों में आत्मसमर्पण किया वह शास्त्रार्थ-वैदुष्य देखकर नहीं, अत्यन्त प्रभावशाली आचरण और मधुर व्यवहार के कारण ही किया। (सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, पृष्ठ 20)। जीवन के अन्तिम वर्ष उन्होंने कर्त्तारपुर में व्यतीत किया। सम्वत् 1596 अश्विन शुक्ल दशमी को उन्होंने शरीर त्याग किया, किन्तु अपनी वाणियों में वे चिन्मय रूप में ज्ञानमय विग्रह के रूप में आज भी जीवित हैं और इनके द्वारा वे सामान्य जन की ज्ञान व मुक्ति का नया संदेश दे रहे हैं, सिक्ख या शिष्य परम्परा के द्वारा उन्होंने मनुष्यता के लिए एक ऐसी प्रेम ज्योति प्रज्वलित की, जो प्रत्येक प्रकार की भेद दृष्टि को निरर्थक मानता है एवं मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करता है, सत्य को ही परमत्व मानता है।

गुरुनानक देव की रचनाएं **'गुरुग्रन्थ साहिब'** में संग्रहीत हैं। रत्न सिंह जग्गी ने अपनी पुस्तक 'गुरु नानक व्यक्तित्व, कृतित्व और चिन्तन' में गुरु नानक की प्रामाणिक वाणी को चार वर्गों में विभक्त किया है, जिसे प्रो0 हरमहेन्द्र सिंह बेदी एवं प्रो0 धर्मपाल मैनी ने भी स्वीकार किया है और यह वाणी की प्रकृति को देखते हुए युक्तिसंगत भी है-

(1) वृहदाकार कृतियाँ -

जपुजी, सिध गोसटि, ओंकार, पट्टी, बारहमाह, थिती

(2) लध्वाकार कृतियाँ -

पहरे, सोदर, अलाहिणयाँ, आरती, कुचजी, सुचजी

(3) वार काव्य -

माझ की वार, आसा की वार, मलार की वार

(4) फुटकल पद

चौपदे (पद्य), अष्टपदियाँ, छंत, सोलहे, श्लोक।

यह वाणी विभिन्न रागों में बद्ध है। वृहदाकार कृतियों को विषयों के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) सिद्धान्त प्रधान - जपुजी, सिध गोसटि
(2) वर्णमालानुसारी - ओंकार, पट्टी

(3) काल-मान पर आधारित - बारहमास, थिती

जपुजी आदि ग्रंथ का सार तत्व है, जिसमें नाम स्मरण-श्रवण और मनन की प्रधानता है। इस वाणी में पाँच अवस्थाओं का वर्णन है, जिन्हें- धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, सरम खण्ड, करम खण्ड, सच खण्ड। इन्हें साधना के पाँच खण्ड भी कह सकते हैं। यह रचना भी छन्द-बद्ध है, किन्तु छन्दशास्त्र के नियमों का पालन नहीं मिलता है। प्रत्येक पउड़ी का अपना स्वतंत्र छन्द विधान है। वृहदाकार कृतियों में 'पट्टी' आसा राग में है पट्टी में वर्णमाला के क्रमानुसार काव्यसर्जना है। इसमें गुरुनानक का सचेत कविरूप दिखाई देता है। 'ओअंकार' रामकली राग में, 'सिध गोसटि' रामकली राग में। इस वाणी का मूल लक्ष्य प्रभु मिलन का महत्व और उसके उपाय निर्दिष्ट करना है। इसमें गुरुनानक ने योगियों के प्रतीकों, रूढ़ियों और आडम्बरों का खण्डन करते हुए अपने सिद्धान्तों की सारगर्भिता व्यंजना की है। बारहमास तुखारी राग में है। इसमें 17 पद्य हैं, जिसमें परमात्मा से विमुक्त मानव की विरह वेदना 12 मासों के नाम से अभिव्यंजित है। इसमें लोक काव्य परम्परा का प्रभाव दिखाई देता है। 'थिती' तिथि का अपभ्रंश है। इसमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों, आडम्बरों की निरर्थकता बतलाते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी तिथियाँ, दिन वार, मास परमपुरुष द्वारा निर्मित होने के कारण शुभ एवं कल्याणकारी हैं। यह राग विलावलु में हैं। लध्वाकार कृतियों में 'पहरे' सिरी राग में है, जिसमें मनुष्य की विभिन्न जीवन अवस्थाओं का अत्यन्त संवेदनशील, मर्मग्राही और प्रभावशाली चित्रण किया है। सोदर 'आसा राग' में बद्ध है। इस पद्य की 22 पंक्तियों में गुरुनानक ने परमात्मा के विशद् द्वार की कल्पना की है, जहाँ अनेक सिद्धज्ञानी, योगी, देवी-देवता प्रभु की लीला का गान कर रहे हैं। 'अलाहिणयाँ' पंजाबी का शोकपरक लोकगीत की तरह ही है, जिसमें वैराग्य भाव की प्रधानता होते हुए भी निराशा और उदासीनता नहीं है। इसका छन्द विधान कुण्डलिया जैसे है, किन्तु मात्राएं कम-अधिक हैं। 'वडहंस' राग में पाँच अलाहिणयाँ लिखी गयी हैं। आरती 'धनासरी' राग में रचित है। कुचजी 16 पंक्तियों की रचना है जो 'सूही राग' में बद्ध है। इसमें प्रभु से वियुक्त जीवात्मा का बुरे आचरण वाली स्त्री के रूप में वर्णन किया गया है, जो द्वैत वृत्ति एवं अहंकार से ग्रस्त है। सुचजी में अच्छे आचरण वाली स्त्री का रूपक है, जो विषय भोग को त्याग कर परब्रह्म में लीन है। यह कृति सूही राग में निबद्ध है।

गुरु जी ने तीन वरकाव्य लिखे हैं- जिनके नाम रागों के आधार पर हैं- माझ राग की वार, आसा राग की वार और मलार राग की वार। डॉ0 जग्गी ने वार काव्य को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि, 'वह काव्यबद्ध एवं उत्साहवर्द्धक वार्ता जिसमें किसी आक्रमण अथवा संघर्ष के प्रकरण में नायक का यशोगान किया गया हो। वीररस का इसमें प्राधान्य होता है और गायक और रचयिता भाट अथवा चारण (ढाढी) होता है।' गुरु नानक ने एक पउड़ी में स्वयं को ढाढी स्वीकार किया है-

हउ ढाढी बेकारू कारै लइआ।
राती दिहैं के बार घुरहु फुरमाइआ।।
ढाढी करे पसाउ सबहु वजाइया।

ननक सचू सालहि पूरा पाइआ।।

ये तीनों वारें पंजाबी भाषा के छन्द 'पउड़ी' में रचित है, जो गुरु महिमा, नामस्मरण, रहस्यानुभूति, एकेश्वरवाद से सम्बद्ध हैं। फुटकल रचनाओं में ऐसे पद हैं, जो विभिन्न अवसरों पर विविध परिस्थितियों के अनुकूल रचे गये हैं। इसके अन्तर्गत चौपदे, अष्टपादियाँ, छन्द, सोलहे, और श्लोक समाहित हैं। इसमें युगीन परिस्थितियों के चित्रण के साथ-साथ धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कर्मकाण्डों की निन्दा का स्वर है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. गुरूनानक.....शाखा के कवि माने जाते हैं।
2. गुरूनानक का जन्म पंजाब प्रांत के.....स्थान पर हुआ है।
3. गुरूनानक का जन्म.....ई. में हुआ है।
4. गुरूनानक की भाषा में.....भाषा के शब्द मिलते है।

(2) सत्य/असत्य बताइए –

1. जपुजी नानक की रचना है।
2. नानक की रचना का मुख्य रस शांत है।
3. नानक की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते है।
4. नानक की रचनाएँ गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित हैं।

10.5 काव्यगत विशेषताएँ

गुरु नानक ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर काव्य रचना की है, किन्तु इनकी भक्ति में व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, समूह मुक्ति की कामना है और समूह मुक्ति की इस कामना के कारण ही इनकी संवेदना का धरातल बहुआयामी है। इनके साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(1) निर्गुण ब्रह्म में विश्वास - संभी संत कवियों की तरह ही गुरु नानक देव निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं, किन्तु संत कवियों से इस अर्थ में वे भिन्न हैं कि निर्गुण में विश्वास करते हुए भी कबीर की तरह सगुण ब्रह्म की सत्ता को अस्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने उपासक की आन्तरिक वृत्ति के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप- निर्गुण-सगुण दोनों का वर्णन किया है। निर्गुण ब्रह्म अनिवर्चनीय है, अतः गुरुनानक इस ब्रह्म का निरुपण निषेधात्मक शैली में करते हैं-

अरबद नरबद धूँधूकारा
बेद कतेब न सिंमृत सासत।
पाठ पुराण उदै नहीं आसत। (गुरु ग्रंथ साहिब, मारु सालहे 15)

निर्गुण ब्रह्म स्वयंभू है। यह न माया है, न छाया है, न सूर्य है, न चन्द्रमा और न अपार ज्योति ही-

जल थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार।।
ना तदि माइआ मगनु न छाइआ न सूरज चन्द न जोति अपार

यहाँ उपनिषदों की निर्गुण प्रतिपादन शैली दिखाई देती है जबकि परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन दो प्रकार से किया गया है-

1. परमात्मा के विराट स्वरूप् के माध्यम द्वारा।
2. परमात्मा के गुणों के वर्णन द्वारा

विराट स्वरूप का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। एक उदाहरण देखिए-
गगन मै थालु रबि चन्दु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मल आनलो, पवण चवरो करे, सगल बनराई फूलंत जोती।। (धनसरी, सबद, 9)

जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म अकथनीय है, उसी प्रकार सगुण ब्रह्म का विराट स्वरूप पर कथन से परे है गुरुदेव ने 'जपुजी' के पउड़ी 24 में कह दिया है-

अंत न जापै कीता आकारु। अंत न जपै पारावारु।।
अंत कारणि केते विललाहि। ता के अंत न पाए जाहि।।
एहु अंत न जाणे कोइ। बहुत कहीए बहुता होइ।।

दरअसल गुरुनानक ऐसे संत कवि हैं जो निर्गुण-सगुण के उभय स्वरूप को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे सगुणमार्गीयों की तरह अवतार व लीला में विश्वास नहीं करते और न ही निर्गुणमार्गियों की तरह सगुण की सत्ता का पूर्णतः निषेध ही करते हैं। दरअसल वे निर्गुण-सगुण मार्ग के बीच की कड़ी है। सिध गोसटि के पउड़ी 24 में उनका विचार है- अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुणु थीआ।।

(2) सदगुरु की महत्ता - गुरुनानक ने यह स्वीकार किया कि यह सृष्टि परम ब्रह्म की रचना है। परम ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु माया एवं अहंकार के कारण जीव ब्रह्म को नहीं पहचानता। आत्मज्ञान होने से ही वह ब्रह्म के विषय में जान सकता है, किन्तु यह आत्मज्ञान गुरु द्वारा ही सम्भव है- गुरु सरणाई छूटीए, मनमुख खोटी रास। गुरु की शरण में आने से ही मुक्ति सम्भव है, किन्तु यह गुरु भीतर ही विराजमान है। निरन्तर ध्यान एवं मनन से गुरुमुखी ज्ञान स्वयं गुरु-रूप हो जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'परमगुरु की असीम कृपा से नाम-रूपी रत्न प्राप्त होता है और मनुष्य मनमुख ज्ञान से निवृत्त होकर गुरुमुख ज्ञान प्राप्त करता है।' गुरुनानक देव का विचार है-

जिसनो क्रिपा करहिं तिनि नाम रतनु पाइआ।
गुरुमुखि लाधा मनमुखि गवाइया।।

गुरुनानक के साहित्य में गुरु एवं परमात्मा अभिन्न हैं-

ऐसा हमरा सखा सहाई
गुरु हरि मिलिआ भगति दृड़ाई। (आसा, सबद 24)

किन्तु नानक असद् गुरु की भर्त्सना भी करते हैं-

कूड़ बोलि मुरदारु खाइ।
अवरी नो समझावणि जाई।
मुठा आपि मुहाए साथै।
नानक ऐसा आगू जापै।। (माझ़ की वार)

गुरुदेव की मान्यता है कि जो व्यक्ति गुरु के सबद में मरता है, वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह मुक्त हो जाता है-

कहु नानक गुरि ब्रह्म दिखाइआ।।
मरता जता नदरि न आइआ।। (गउडी, सबद 4)

(3) भक्ति भावना - उपनिषद, श्रीमद भागवत, गीता, नारदभक्ति सूत्र आदि ग्रंथों का अनुशीलन करें, तो दो तरह की भक्ति दिखाई देती है- (1) वैधी भक्ति (2) रागानुगा भक्ति। गुरुनानक ने वैधी भक्ति के विविध विधि विधानों- तिलक माला आदि की निस्सारता का वर्णन करते हुए रागानुगा भक्ति को स्वीकृति दी है, किन्तु कहीं-कहीं वैधी भक्ति को भी मान्यता दी है। दरअसल उनकी भक्ति प्रेमभक्ति है। नानक के अनुसार परमात्मा की विस्मृति बहुत बड़ा रोग है- **'इकु तिलु पिआरा वीसरे रोग बड़ा मन माहि।'** गुरु नानक ने अपनी भक्ति को निम्नलिखित प्रतीकों द्वारा व्यक्त है-

- अपने को पुत्र एवं परमात्मा को पिता रूप मानकर - वत्सल भाव
- परमात्मा को अपना सखा मानकर - सख्य भाव
- अपने को सेवक एवं परमात्मा को स्वामी समझना - सेवक-सेव्य भाव
- अपने को भिखारी एवं परमात्मा को दाता समझना – दैन्यभाव
- अपने को स्त्री एवं परमात्मा को पति समझना- माधुर्यभाव

निर्गुण संतों की भक्ति संतभाव की भक्ति है और संतभाव यह है कि जो परमतत्व में लीन हो, जो अपना व्यक्तित्वांतरण करके तद्रूप हो गया हो-

गुरु परसादी दुरमति खोई। जह देखा तह एकौ सोई।।

और ऐसा भक्त ही निर्भय हो सकता है। एक ऐसे समय में जब चारों ओर आतंक, भय का साम्राज्य था। अविश्वास का वातावरण था, तब नानक जैसे भक्त कवियों ने निर्भय होकर निर्भय

होने की शिक्षा अपने जीवन, कर्म एवं विचार के माध्यम से दिया था, क्यों कि उनके मन में पवित्र निष्ठा है, सहज भाव है, प्रभु के लिए व्याकुल पुकार है, आत्म समर्पण का तीव्र आवेश है', मधुर तन्मयता है और अपूर्व माधुर्य-

हरि बिन जीऊ जलि बलि जाउ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ, अवरू नाहीं थाउ।
धरती त हीरे लाल जड़ती पलंधि लाल जड़ाउ।
मोहणी मुखि मणी सोहै करै रंगि पसाउ।
मति देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै ताउ।

किन्तु यह तभी सम्भव है, जब अहंकार का नाश हो जाये, क्योंकि गुरुनानक की दृष्टि में हउम या अहंकार भाव मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। उन्होंने ने कहा है कि-

मन रे हउमै छोड़ि गुमानु
हरि गुरु सरवरु सेवित् पावहिं दरगह मानु।।

गुरुनानक की भक्ति के विभिन्न रूप हैं, इन्हें विभिन्न अवस्थाएं भी मानी जा सकती हैं-

(1) सदगुरु की कृपा या प्राप्ति
(2) नाम स्मरण
(3) सत्संगति या साधु संगत
(4) परमात्मा का हुक्म या भय
(5) दृढ़ विश्वास
(6) आत्म समर्पण भाव या ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम
(7) दैन्य भाव
(8) परमात्मा का कीर्तन एवं निरन्तर स्मरण
(9) भगवद् प्राप्ति या कृपा प्राप्ति

दरअसल नानक ने स्वयं को परमात्मा को समर्पित कर दिया था-

जेता देहि तेता हउ खाउ।
बिआ दरु नाहीं कै दरि जाउ।
नानकु एकु कहै अरदासि।
जीउ पिंड सभु तेरै पासि।

और आत्म समर्पण के चरम उल्लास में नानक कह उठते हैं-

हम घरि साजन आए। साचै मेलि मिलाए।
सहजि मिलाए हरि मन भाए पंच मिले सुखु पाइआ।

किन्तु यह तभी सम्भव है, जब अहंकार का विनाश हो जाय। अहंकार के त्याग के बिना ईश्वर प्राप्ति तो असम्भव है ही, मनुष्य की मनुष्यता के लिए भी यह जरूरी है।

(4) समानता का भाव - गुरुनानक की साधना वैयक्तिक और आध्यात्मिक होते हुए भी समष्टिपरक है, इसमें समूह मुक्ति की कामना है। निर्गुण संतों की तरह नानक की भी मान्यता है कि सारी सृष्टि ब्रह्ममय है, इसीलिए प्रत्येक प्रकार की भेद दृष्टि निरर्थक है। नानक ने समाज व्यवस्था को विकृत करने वाली रुढ़ियों, पाखण्ड, रीतिरिवाज और मिथ्या आडम्बरों का अस्वीकार कर दिया-

पड़ि पुसतक संधिआ बादं। शिल पूजसि बगुल समाधिं।
मुखि झूठ विमूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं।
गलि माला तिलकु लिलाटं। दुई धोती वसत्र कपाटं।
जो जाणसि ब्रह्मं करमं। सभ फोकट निसचउ करमं।
कहु नानक निहचऊ धिआवै। विणु सतिगुरु वार न पावै।

किन्तु उनका मार्ग प्रेम और मैत्री का है, खंडन-मंडन में कहीं भी वे आक्रोश की भाषा नहीं बोलते, क्योंकि कबीर की तरह वे नीची कही जाने वाली जाति से नहीं आये थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, 'उनका आदर्श निराकार, निरहंकार और निर्वैर सत्यपुरुष था, उनका बल कथनी और करनी के व्यवधान को पाटने पर था, उनका उपाय एकान्त भगवन्निष्ठा और अंकुठ शरणागति था, उनकी एक विशेष निष्ठा गुरु की शिक्षा पर थी।'दरअसल गुरुनानक ने एक ऐसे मानव-धर्म, विश्व धर्म का स्थापना की, जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। प्रेम ही सर्वोच्च मूल्य है और इस प्रेम की प्रधानता के कारण वे कहीं भी अन्य निर्गुण संतों की तरह आक्रामक नहीं हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि 'इनकी भाषा में किसी प्रकार का घुमाव या जटिलता नहीं है। बहुत ही सीधी-सादी भाषा और बहुत ही निर्मल प्रतिपादन शैली- यही नानक की रचनाओं की विशेषता है। इनकी निरीहता में कोई हीनता-ग्रथि नहीं, विरुद्ध पड़ने वाले विचारों के प्रति कोई हिंसा का भाव भी नहीं, और जो लोग सत्य मार्ग से विचलित हैं उनके लिए घृणा का भाव भी नहीं।' दरअसल गुरुनानक का रास्ता निर्वैर का रास्ता है, मृदुल स्वभाव और सत्यशील आचरण का राश्ता है। किसी ने ठीक ही कहा है-

नानक शाह फकीर, हिन्दू का गुरु मुसलमान का पीर।

(5) प्रज्ञा एवं शुद्ध बुद्धि पर बल - सम्पूर्ण निर्गुण संत साहित्य ज्ञान के महत्व पर सर्वाधिक बल देता है, किन्तु यह शास्त्र ज्ञान नहीं है, बल्कि आत्मज्ञान है। गुरुनानक कहते हैं –

मन वैरागी धरि वसै सच भै राता होइ।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ।।

इस ज्ञान से सत्य तक पहुँचा जा सकता है और परमात्मा सत्य रूप ही है। वह त्रिकालातीत सत्य है-

आदि सचु, जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी सचु।

(6) समन्वयवाद - गुरुनानक लोकनायक संत है, क्योंकि उनकी वाणियों में लोक की पीड़ा समाई हुई है। एक ऐसे समय में जब धर्मान्धता एवं भेदभाव चरम पर था, तब उन्होंने अपने मुस्लिम साथी मरदाना की रबाब के साथ सामासिक संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित की। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड की निन्दा की तो इस्लामी कट्टरता की भी निन्दा की। एक सच्चे मुसलमान की परिभाषा देते हुए कहते हैं-

मुसलमाणु कहावणु मुसलकुल, जो होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अंउलि दीनु करि मिठा मसंकल माना मालु मुसावै।
होई मुसलिमु दीन मुहाणै, मरण जीवन का भरमु चुकावै।

इसी प्रकार उनके साहित्य में पैराणिकता एवं ऐतिहासिकता, समकालीनता एवं नैतिक आदर्शों का भी अद्भुत समन्वय है।

(7) अभिव्यंजना पक्ष - गुरुनानक की बानी में हृदय के सहज, सरल अनुभूतिगम्य भावों के निर्भय, निर्द्वन्द्व उद्गार व्यक्त हुए हैं। इनकी वाणी में अनुभूति की प्रधानता होने के कारण अभिव्यंजना इनके लिए साधन मात्र है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है- 'अद्भुत है गुरु की वाणी सहज बेधक शक्ति। कहीं कोई आडम्बर नहीं, कोई बनाव नहीं, सहज हृदय साधना है। सहज भाषा बड़ी बलवती आस्था है। सीधी लकीर खींचना टेढ़ा काम है। गुरु का अनाडम्बर सहज धर्म ऐसी ही सहज वाणी से प्रचारित हो सकता था। कितनी अद्भुत निर्णयमान शैली है। कहीं भी पांडित्य का दुर्धर बोझ नहीं है।' जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, नानक ने अपने समय के समाज की आम भाषा को स्वीकार किया तथा इनकी काव्य-भाषा में देश की भाषिक विविधता भी दिखाई देती। पूर्वी एवं पश्चिमी पंजाबी के साथ ही खड़ी बोली, ब्रजभाषा, रेखता का भी प्रयोग मिलता है। सिन्धी, लहंदा के भी शब्द उनकी वाणियों में है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

(1) खड़ी बोली

(2) लहंदा

(क) हंभी वंण डुंमणी रोवा झीणी वानि (सिरी, रागु, सवद 24)

(ख) मेडा मनु रत आपनड़े पिर नालि (मारु काफी सबद 9)

(3) गुजराती - सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि (सिरी रागु, सबद 24)

(4) ब्रजभाषा - (क) आपि तरै संगति कुल तारे (आसा, सवाद 14)

(ख) तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोई हरे (आसा, सवद 22)

(5) पूर्वी हिन्दी - (क) भईले उदासो रहउ निरासो (आसा, सवद 26)

(ख) पंकजु मोह पशु नहीं चालै हम देखा तह डूबो अले।

गुरुनानक की भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनकी भाषा में संयम, मर्यादा, शालीनता, शिष्टता के गुणों से युक्त है। प्रतीकों द्वारा इन्होंने अपनी भाषा को भावगर्भित, सजीव एवं व्यंजक बनाया है। दादुर, सिवार, काला हिरन, भँवर मछली, नहर, सरवरि आदि प्रतीक है। कुछ उदाहरण देखिए-

1 - भखसि सिवालु वससि निरमल जल अमृतु, न लखसि रे (रागु मारु, सवद 4)

इस पद में दादुर से अभिप्रेत है विषयासक्त मानव, सिवार विषयवासनाएँ हैं जिनमें वह अनुरक्त है।

2 - उतरि अवकटि सरवरि न्हावै (आसा, असटपदी-1)

यहाँ अवघटि विषयों की घाटी तथा 'सरवरि' सत्संग के सरोवर के प्रतीक हैं।

संगीतात्मकता - गुरुदेव की वाणियाँ संगीतात्मकता से ओत-प्रोत है। नाद सौन्दर्य उनकी वाणियों की मुख्य विशेषताएँ हैं। इतना ही नहीं उन्होंने विभिन्न राग रागिनियों की प्रधानता के आधार पर अपने ग्रंथ का नामकरण भी किया है। एक उदाहरण देखें-

अनहदो अनहदु बाजे रुण झुण कारे राम।।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम।।
अनदिनु राता मन वैरागी सुनि मण्डलि घरु पाइआ।
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतगुर अलख लखाइआ।(रागु आसा, महला 1, छंत 2)

निश्चय ही संगीत की जो दिव्य एवं मोहक माधुर्य गुरु जी की वाणी में उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ है एवं संत परम्परा की विशिष्ट पहचान है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ - मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से गुरु जी की भाषा सर्व जनप्रिय एवं व्यावहारिक हो गई है तथा उसमें लाक्षणिकता का समावेश हो गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(क) जिउ गूँगे मिठिआई (गूँगे का गुड़) (ख) सुआन पूछि जिउ रे (स्वान की पूँछ) (ग) कसि कसवटी लाइए (कसौटी पर कसना) (घ) मुँह काला, पति खोइ (प्रतिष्ठा खोना) (ङ) जो वीजै सो खावणा (जो बोना सो खाना)

विभिन्न रसों की योजना - ज्ञान, वैराग्य, भक्ति एवं योग की प्रधानता के कारण शान्त रस मुख्य अंगीरस है- एक उदाहरण देखिए-

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि।
जिन खिनु पलु नामु व वीसरे ते जन विरले संसारि 1/1 रहाउ
जोती-जोति मिलाईए सुरती सुरति संजोगु।
हिंसा हउमे तनु गए नाही सहसा सोगु।।
गुरुमुखि जिसु हरि मनि बसै तिसु मेले गुरु संजोगु ।।2।।20।।
(सिरी, रागु, सबद 20)

इसमें निर्वेद स्थायी भाव है। हर्ष, विषाद, स्मृति आदि संचारी भाव है। जगत की क्षण भंगुरता का आभास, प्रभु चिन्तन, हरिगुणगान आदि आलम्बन विभाव हैं। सत्संग गुरु उपदेश, जरा, व्याधि, मरण उद्दीपन विभाव है। रोमांच, विरक्ति आदि अनुभाव हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमा भक्ति के साधक होने के कारण उन्होंने शृंगार रस से ओत प्रोत रचनाएं भी लिखी हैं किन्तु यहाँ श्रृंगार अलौकिक है, लौकिक नहीं। एक उदाहरण देखिए-

तेरे वके लोइण, दंत रीसाला।
सोहणे नक, जिन लंमड़े बाला।।
कंचन काइया, सुइने की ढाला।।7।।
तेरी चाल सुहावी, मधुराणी वाणी।
कुहकनि कोकिला, तरल जुआणी।।8/2।। (रागु वहहंसु, छंत 2)

श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्ष यहाँ हैं वियोग शृंगार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

सावणि सरस मना घण बरसहि रुति आए।
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।।
पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुख माए।।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी, कापड़ि तनि न सुखावा।
नानक सा सोहागणि कंती पिरकै अंकि समावए।।9।। (तुखरी, बारहमासा)

इसके अतिरिक्त गुरुनानक ने करुण, रौद्र, भयानक, अद्भुत रस, हास्य रस की भी योजना की है।

समग्रतः गुरुनानक का साहित्य मनुष्य को निर्वैर एवं निर्भय होने का सन्देश देता है। वह अहंकार, भय एवं लोभ से मुक्ति का दर्शन देने वाला साहित्य है, मनुष्य को नैतिक, सदाचारी, सहज एवं सरल बनाने वाला साहित्य है। यहाँ परमार्थ और व्यवहार अलग-अलग नहीं है, बल्कि एक ही है, दरअसल गुरुनानक का साहित्य मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति को जाग्रत करने वाला साहित्य है तथा प्रत्येक प्रकार की सत्ताओं से निर्भय करने वाला वाणी है। तभी तो गुरुनानक कह सके-

मरणै की चिन्ता नहीं जीवण की नाहीं आस।

भगवद् भक्ति एवं त्याग-परायण निर्भीक जीवन ही उनकी साधना का उद्देश्य है।

10.6 गुरूनानक : मूलपाठ

1. सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरू
अकाल मूरति अजूनी सैमं गुरप्रसादि
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
सोचे सोचि न होवई जे सोची लख वार
चुपै चुपि न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।
मुखिआ मुख न उतरी जे बंना पुरीआ चार।।
सहस सियाणपालख होहि ते इक न चलै नालि।।
किव रूचियारा होईरे कूड़े तुटे पालि।।
हुकमि सजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। (जपु जी)

2. रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर जैसी जल कमलेहि।
लहरी नालि पछाडिऐ भी विमसै असनेहि
जल महि जीअ उपाई कै कितु बिनु जल मरणु तिनेहि।।
(सिरि रामु-असटपदीआ)

3. विसमादु नाद विसमादु वेद।। विसमादु जीउ विसमादु भद।।
विसमादु रूप विसमादु रंग।। विसमादु नामे किरहि जंतु।।
विसमादु उपण्ड विसमादुपाणी।। विसमादु अगनी खेउहि विडाणी।।
विसमादु धरती विसमादु खाणी।। विसमादु साहिल नहीं पराणी।।
विसमादु संजोग, विसमादु विजोणु, विसमादु मुख विसमादु भोगु।।
विसमादु सिफति विसमादु सालाह।। विसमादु उझड़ विसमादु राह।।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि।। विसमादु देखै हाजरा हजूरि।।
देखि विडाणु रहिआ विसमादु।। नानक बुसणु पूरै भामि।। (आसा दीवार)

4. सावणि सरस मना घण बरसहि रुति आए।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु कमाए।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी कापडु तनि ने सुखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिर के अंकि समावए। (बारहमासा)

5. मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु।
बंदे से जि पवहि विचि बंदी बेखणा कउ दीदारु।
हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु।

तीरथ नावहि अरचा पूजा अगरवासु बहकारु।
जोगि सुनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु।
सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु।
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै के वीचारि।
देदे मंगहि सहसा गूणा लोभ करे संसारु।
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा बेकार।
इकि होदा खाइ चलहि ऐथाऊ तिना भी काई कार।
जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार।
ओइ जि आखहि सु तूं है जाणहि तिनाभि तेरी सार।
नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु।
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पाछारु।

10.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

निर्गुण भक्ति संप्रदाय के महान दार्शनिक कवि एवं समाज सुधारक गुरूनानक देव जी के संपूर्ण जीवन एवं साहित्यिक अवदान से परिचित हो चुके होंगे। साथ ही आप निर्गुण भक्ति संप्रदाय के काव्य रूप की वैचारिक विशिष्टता का परिचय भी प्राप्त कर चुके होंगे। आपने इस इकाई में अध्ययन किया कि गुरूनानक जी की रचनाएँ भक्ति कालीन मानवतावादी दृष्टि के अनुकूल है। इनकी रचनाओं में समतावादी असाम्प्रदायिक समाज की रचना पर बल है। इनकी रचनाओं में कही भी कट्टरता या आक्रोश नहीं है बल्कि सीधे-साधे ढ़ंग से मानव और ईश्वर के बीच तादात्म की खोज है। इस दृष्टि से आप भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं।

10.8 शब्दावली

- निर्गुण - ईश्वर के निराकार रूप की कल्पना।
5 असाम्प्रदायिकता - सभी धर्मों के प्रति सम्मान एवं आदर का भाव।
- सहजता - सहज जीवन पर बल।
- समता - समानपूर्ण दृष्टि।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. निर्गुण

2. तलवण्डी

3. 1469

4. कई

(2) 1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. सत्य

10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अनभै साँचा, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. पंजाब के हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 हरमहेन्द सिंह बेदी, हरियाणा।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. गुरु नानक के साहित्य की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कीजिए तथा हिन्दी संत काव्य परम्परा में गुरू नानक के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. गुरु नानक के व्यक्तित्व एवं रचनाओं पर विस्तृत निबंध लिखिए।

इकई 11 रीतिकालः परिचय एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 रीतिकाल परिचय
11.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
11.3.2 काल-विजान
11.3.3 नामकरण
11.3.4 वर्गीकरण
11.3.5 प्रवृत्तियाँ
11.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
11.4.1 दरबारीपन
11.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
11.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
11.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
11.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर

सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

11.2 उद्देश्य

'मध्यकालीन कविता' शीर्षक प्रश्न पत्र का यह रीतिकाल संबंधित खण्ड की प्रथम इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

11.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहेली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

11.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है, वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता। इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता। लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना

राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है.....''भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। ..... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का लडा़ई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

11.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	**आलोचक**
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डॉ0 नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह
1624- 1832 ई.	मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।

रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में 1650 ई. से 1850 ई. के बीच मान लिया गया है। 1643 ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. के बाद समाप्त होती है। 1842- 43 ई. से राजा लक्षमण

सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' का रचनाकाल प्रारंम्भ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर 1850 ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- '' इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'' केशवदास का समय 1590 से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, डॉ0 नगेन्द्र
विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - 1643 ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। "(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृष्ठ - 63) आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

11.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है '' इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।'' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' पृष्ठ 179) नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह 'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है। .....संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना

करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही 'रीति' नाम से विख्यात हुई। '' (पृष्ठ- 563) रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा़ और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किये गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही 'रीतिकाल' नामकरण का आधार बनी। 'रीतिकाल' का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि 'रीतिकाल' नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता । रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्की के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	**आलोचक**
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डॉ0 रामाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

11.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

रीतिकाल

रीतिग्रन्थकान कवि	अन्य कवि
(बिहारी-प्रतिनिधि कवि)	(घनानन्द प्रतिनिधि कवि)

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डॉ0 नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डॉ0 बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

रीतिकालीन कविता का वर्गीकरण

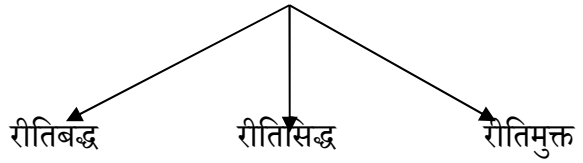

रीतिबद्ध	**रीतिसिद्ध**	**रीतिमुक्त**
(चिन्तामणि त्रिपाठी, भूषण, केशव, देव, प्रतावसिंह, मतिराम,सूदन इत्यादि कवि)	(बिहारी मुख्यतः)	घनानन्द,आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

11.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है। रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- **रीति-निरूपण की प्रवृत्ति :** रीतिकाल कविता की सबसे बडी़ पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को

रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।

- **श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति -** रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था। अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ।।' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''
- **सहजता बनाम अलंकरण-** भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई । मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।
- **सामंती चित्र और दरबारीपन-** रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि

पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि..... यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था। इन आदर्शों से गाँव का कोई नाता नहीं था। इसलिए नागर संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उडा़ने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय ..... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर..... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल ..... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन ..... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन..... ने माना है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित शब्दों पर 8-10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

11.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानें है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भी में समझने का प्रयास करें।

11.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। ..... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा।''

11.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। 200 वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है।.....पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य- लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम्

उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहे हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है। '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता। कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता -सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ। "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इक्ट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।''

11.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया। शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- '' रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।'' (पृष्ठ - 564) पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की

है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" ('हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) डॉ0 नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई।।

फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कह्यो मुसक्याइ, लला, फिर आइयो खेलन होरी।।

11.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 169) शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। ..... अतः उनकी बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 186) यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं **(भाखाबद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी)** तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में

टिप्पणी है ‘‘रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?’’ (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 57)

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की ‘हिततरंगिणी’ रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाला की कविता का समय मुगल काल का समय है।

11.6 रीतिकालः मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को खा़रिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना हेय नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः ‘‘ मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है ‘‘ रीतिकालीन काव्य का आकर्षण

समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। .....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। .....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक- नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। '' (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)

11.7 सारांश

मध्यकालीन कविता की 'रीतिकालः परिचय एवं आलोचना' शीर्षक यह 11 वीं इकाई है। इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का 'उत्तर रमध्यकाल' (1650- 1850 ई.) रीतिकाल कहलाता है।
- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।
- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति ा, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त

- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

11.8 शब्दावली

रीतिबद्ध - काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।

दरबारीपन - सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।

अखण्ड - बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ

प्रशस्ति - किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।

पुनर्जागरण - नवीन चेतना का उदय

रूपान्तरण - स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1650- 1850 ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

11.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डॉ0 नगेन्द्र

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 12 बिहारी : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 जीवन परिचय
12.3.1 युग परिवेश और समाज
12.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व
12.3.3 रीतिसिद्ध कवि
12.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई
12.4 श्रृंगारिक काव्य
12.4.1 संयोग श्रृंगार
12.4.2 वियोग श्रृंगार
12.5 भक्ति एवं नीति काव्य
12.6 संरचना शिल्प
12.6.1 काव्य रूप
12.6.2 काव्य भाषा
12.6.3 अलंकार
12.6.4 छंद
12.7 संदर्भ सहित व्याख्या
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि रीतिकाव्य के तीन प्रमुख भेद हैं- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। बिहारी रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'बिहारी सतसई' है, जो बिहारी की अक्षय कीर्ति का आधार है। अधिकांश रीति कवि दरबारी थे। बिहारी रीतिकाव्यधारा के एक प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इस इकाई में हम बिहारी के काव्य पर चर्चा करेंगे। इनके काव्य में श्रृंगार की अतिशयता, विलासी वातावरण की उपज थी। बिहारी ने भी इसी दरबारी काव्य परम्परा को अपनाते हुए अपने काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को अत्यधिक महत्व दिया है।

रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण 'सुमिरन को बहानों' कहके श्रृंगार के साथ भक्ति को स्थान दिया है। बिहारी ने भी भक्ति के साथ नीतिमूलक दोहों की रचना की है। इस इकाई में आप देखेंगे कि कैसे उनकी कृष्ण भक्ति पर भी सामंती व्यवहार की छाप है और नीति से परिपूर्ण दोहों में जीवन का ठोस अनुभव बिखरा पड़ा है।

'बिहारी सतसई' श्रृंगारपरक सतसई परम्परा में तो सर्वश्रेष्ठ है, मुक्तक काव्य परम्परा भी एक अपूर्व मिसाल है। जिसमें नपे-तुले शब्दों में भावों को व्यक्त करने की अनूठी क्षमता है, जिसे पढ़कर आप स्वयं समझ जायेंगे कि बिहारी के दोहों के लिए 'नावक के तीर' क्यों कहा जाता है। बिहारी की इस समास शैली, व्यवस्थित भाषा, वाक्य रचना को देख-पढ़कर आप कवि के अभिव्यक्ति पक्ष की कलात्मक विशिष्टताओं को समझ पायेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बिहारी का जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी सतसई की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीति काव्य परंपरा को समझ सकेंगे।
- रीति सिद्ध परंपरा क्या है? और बिहारी को रीति सिद्ध कवि क्यों कहा जाता है ? यह जान सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के आधार पर रीतिकाव्य की विशेषताएँ स्पष्ट तौर पर समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को रेखांकित कर सकेंगे।
- बिहारी काव्य की भक्ति व नीति काव्य सम्बन्धी विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के कला पक्षीय महत्वपूर्ण घटकों को रेखांकित कर सकेंगे।

12.3 जीवन परिचय

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी का जन्म सन् 1595 में ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनकी शिक्षा-दीक्षा पितृगुरु महन्त नरहरिदास की देखरेख में हुई। इनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में बीता। मथुरा में किसी ब्राह्मण परिवार में विवाह होने के पश्चात् ये यहीं बस गए। इन्होंने फारसी काव्य का भी अभ्यास किया और शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर शीघ्र ही उनके कृपापात्र बन गए। सम्राट के कृपापात्र बनते ही बिहारी वृत्ति हेतु अनेक राज्यों में आने-जाने लगे, वृत्ति का दायरा बढ़ता गया। सन् 1645 के आसपास बिहारी वृत्ति लेने जयपुर पहुँचे। कहा जाता है कि उस समय जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महाराजा जयसिंह) अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि उन्हें राजकाज से कोई मतलब न था। प्रजा और सामन्तों की सलाह से बिहारी ने निम्न दोहा लिखकर महाराज जयसिंह को पहुँचाया -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हलाल।।

इस दोहे का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। राजा और रानी दोनों प्रसन्न हुए। उन्होंने बिहारी को केवल सम्मानित ही नहीं किया अपितु प्रत्येक दोहे पर एक अशरफी देने का भी संकल्प किया। तभी से बिहारी का मान अधिक बढ़ गया। तदुपरान्त बिहारी राजकवि के रूप में जयपुर में रहने लगे और यहीं रहकर उन्होंने अपनी 'बिहारी सतसई' की रचना की। सतसई की ख्याति के पश्चात् ये पुनः मथुरा लौट आए और सन् 1664 ई. में यहीं इनका निधन हुआ।

12.3.1 युग परिवेश और समाज

युग विशेष के साहित्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना बहुत आवश्यक है क्योंकि जहाँ किसी युग का वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है वहीं दूसरी ओर वह इनके निर्माण में भी योगदान देता है। बिहारी के रचना-कर्म को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक आधारों को दृष्टिपथ पर रखना जरूरी होगा क्योंकि इसी परिवेश ने बिहारी की रचनात्मकता को गति दी है। रीतिकाल मुगल शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके पश्चात् क्रमशः ह्रास-पतन तथा विनाश का काल भी है। बिहारी का समय अकबर के शासन काल का उत्तरार्द्ध और औरंगजेब के राज्याभिषेक के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक का है। उन्होंने जहाँगीर-शाहजहाँ और औरंगजेब तीन मुगल शासकों के शासन और उनकी नीतियों को देखा था। जहाँगीर-शाहजहाँ का काल उनके राज्य विस्तार और शांति और सम्पन्नता वैभव-विलास का काल था। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। उच्च वर्ग जहाँ आमोद-प्रमोद में मस्त था वहीं सामान्य जनता उपेक्षित और शोषित थी।

बिहारी को फारसी काव्य का अच्छा अभ्यास था जिससे शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर वे शीघ्र ही उसके कृपा पात्र बन गए। बिहारी सन् 1645 के आसपास जयपुर के महाराजा जयसिंह के दरबार में राजकवि के रूप में रहते थे। महाराज जयसिंह मुगल सम्राट औरंगजेब से मित्रता का हाथ बढ़ा लिये जाने के पश्चात् भोग-विलास में रत हो गया था। उत्तराधिकार का प्रश्न हो, चाहे राजपूतों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें मुगलों की अधीनता स्वीकार करने हेतु विवश करने का, महाराज जयसिंह ने सदैव औरंगजेब का साथ दिया। बिहारी इस बात से दुखी थे, अतः उन्होंने एक दोहे में अन्योक्ति द्वारा राजा की भर्त्सना की -

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तू पच्छीन न मारि।।

सम्राट और उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों के दोहरे शासन से सामान्य जनता त्रस्त थी। इस गलत प्रशासनिक नीति की ओर संकेत करने से भी बिहारी नहीं चूके –

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द्व।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि पावस रवि चन्द।।

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक ओर इत्र-फुलेल में डूबा शासक और शहरी वर्ग था तो दूसरी ओर दयनीय स्थिति में गुजर-बसर कर रहा भोला ग्रामीण शोषित वर्ग। इन दोनों वर्गों का सजीव चित्रण बिहारी के दोहों में देखने को मिलता है।

12.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व

बिहारी जन्मजात प्रतिभा के धनी थे। वे काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। इसके साथ-साथ उन्हें कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शनशास्त्र, राजधर्म, युद्धविद्या, गणित व कर्मकाण्ड आदि शास्त्र विषयों का भी ज्ञान था। मुगलकाल का सामाजिक जीवन सामंतवाद पर आधारित था, जिसका पूरा-पूरा प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा। विलास और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन ने इन्हें रसिक बनाया जिससे इन्होंने जीवन में भी भोग पक्ष को स्वीकृति दी। बिहारी के निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व से शंका, वेदना, अनिश्चीतता, लघुता, आत्महीनता, विवशता आदि संकुचित भावनाएँ बहुत दूर थीं। इसके विपरीत आस्था, विश्वास, उत्साह, साहस और संकल्प जैसे आशावादी गुण उनमें विद्यमान थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह के अनुचित कार्यों पर कटु आक्षेप करने में भी संकोच नहीं किया। (बिहारी अनुशीलन, पृष्ठ 267) इस प्रकार बिहारी के पास एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व था।

कृतित्व - बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है। इसे 'सतसई' या 'सतसैया' नाम से भी जाना जाता है। इस रचना में बिहारी के 713 मुक्तक परम्परा के दोहे तथा सोरठे संगृहीत हैं। हिन्दी में सतसई परम्परा के प्रारम्भ का श्रेय 'बिहारी सतसई' को प्राप्त है। इसके अनुकरण पर सात सौ दोहों के संग्रह को 'सतसई' के रूप में प्रकाशित करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया और एक समृद्ध सतसई परम्परा सामने आई। आधुनिक काल से पूर्व तक सतसई शब्द केवल बिहारी

सतसई और उसकी लोकप्रियता का आभास कराता है वहीं दोहों में निहित गूढ़ार्थ और उसके प्रभाव को भी स्पष्ट करता है -

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर। देखन में छोटे लगैं घाव करें गंभीर ।।

बिहारी के दोहों के लिए 'गागर में सागर भरने' की उक्ति प्रसिद्ध है। मुक्तक रचनाओं की उत्कृष्टता हेतु रामचन्द्र शुक्ल कल्पना की समाहारशक्ति और भाषा की समास शक्ति को आवश्यक मानते हैं। इन दोनों विशेषताओं का समावेश इस रचना में देखने को मिलता है। बिहारी सतसई श्रृंगार प्रधान रचना है जिसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अनूठी व्यंजना हुई है, तथापि भक्ति नीति आदि अन्यान्य विषयों की अभिव्यक्ति भी इसमें बखूबी देखी जा सकती है।

12.3.3 रीतिसिद्ध कवि

रीतिकालीन साहित्य के रचयिता कवि तीन प्रकार के थे- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध व रीतिमुक्त। बिहारी मुख्यतः रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से काव्य तत्वों का निरूपण नहीं किया और नहीं लक्षण ग्रन्थ की शैली को अपनाया। इस प्रकार विशुद्ध काव्य का सर्जन करने वाले कलाकार सच्चे अर्थों में रीतिसिद्ध कवि हैं और उनका काव्य रीतिसिद्ध काव्य है। ऐसा नहीं है कि बिहारी रीतिशास्त्र की परम्परा से अनभिज्ञ हैं, काव्य का शास्त्रीय आधार उन्हें ज्ञात नहीं वरन् रीति शास्त्र की परम्परा में वे पूरी तरह सिद्ध हैं और रचनाकर्म में प्रवृत्त होने पर उनकी दृष्टि रस अलंकार, ध्वनि तथा नायिका भेद आदि लक्षणों पर पूरी तरह केन्द्रित रही है। यद्यपि बिहारी ने 'सतसई' की रचना लक्षण गंथ के रूप में नहीं तथापि दोहा बनाते समय बिहारी का ध्यान काव्य लक्षणों पर अवश्य केन्द्रित था। शुक्ल जी का भी मत है कि 'बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है पर 'नखशिख' 'नायिका भेद' षट् ऋतु वर्णन के अन्तर्गत उनके सभी श्रृंगारी दोहे आ जाते हैं।' इस प्रकार वे रीतिशास्त्र की एक बँधी बधाई लीक पर न चलते हुए भी उससे कहीं आगे निकल जाते हैं। बिहारी की इसी विशेषता पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं- 'शास्त्र स्थिति संपादन मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। कहीं तो चमत्कारातिशय के लिए ये उक्तियाँ बाँधते थे और कहीं रसाभिव्यक्ति के लिए। कही इन्होंने रीतिशास्त्रों में गिनाई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे। किसी विशेष नायिका या नायक के स्वरूप के लिए जो शर्तें शास्त्रों में कही हुई हैं वे उप लक्षण मात्र हैं, अर्थात् वे मार्ग निर्देश के लिए हैं। उनके सहारे नई-नई कल्पनाएँ स्वयं कवि कर सकता है और भी बातें वह ला सकता है' (बिहारी की वाग्विभूति पृष्ठ 22)। इस प्रकार बिहारी रीतिसिद्ध काव्य धारा के एक अन्यतम कवि हैं।

इस समय फारसी राजभाषा थी और फारसी कवियों को भी दरबार में राज्याश्रय प्राप्त था। अतः तत्कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर बिहारी ने चमत्कारिक उक्तियों का नवीन प्रयोग अपने दोहों में किया है -

करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़त नीचु। दीने हूँ चसमा चखनु चाहे लहै न मीचु ।।

विरह की तीव्रता ने नायिका को इतना क्षीणकाय कर दिया है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूँढ पा रही है। ऐसा अस्वाभाविक किन्तु रोमांचक चित्रण फारसी में ऊहात्मक वर्णन कहा जाता है, जिसका प्रयोग बिहारी ने स्थान-स्थान पर किया है क्योंकि बिहारी को फारसी कवियों का साहचर्य तो प्राप्त था ही साथ ही यह दरबारी परिवेश की माँग भी थी। बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका- भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि का ध्यान रखकर सुन्दर दोहों की रचना कर एक चमत्कारिक स्वतंत्र काव्य सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस काव्य की प्रेरणा का आधार अंतःकरण की स्फूर्ति के प्रभाव से न होकर दरबारी है। जिसके कारण इसकी बराबरी घनानन्द, देव आदि रीतिमुक्त कवियों से नहीं की जा सकती।

12.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई

रचना शैली की दृष्टि से काव्य दो प्रकार का होता है- प्रबन्ध काव्य व मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में जहाँ सर्गों की कथावस्तु का परस्पर सम्बन्ध रहता है वहीं मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद्य स्वयं में स्वतंत्र होता है। (बिहारी ने प्रबन्ध काव्यों की रचना न कर मुक्तकों द्वारा काव्य-शास्त्र का बोध कराना प्रारम्भ किया।) रस की पूर्णता का बोध कराने के लिए जितना अवकाश प्रबन्ध काव्य में होता है उतना मुक्तक काव्य में नहीं। मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य का भेद स्पष्ट करने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथन को उद्धृत किया जा सकता है ''मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 168) इसी से यह सभा समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खंडदृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।

बिहारी में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समाहार शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान थी, जिसकी आवश्यकता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मुक्तक रचनाकार की सफलता के लिए आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि बिहारी एक सफल मुक्तक कार साबित हुए। कल्पना की समाहार शक्ति का एक उदाहरण देखिये-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाय ।।
इसी प्रकार भाषा की समाहार शक्ति का उदाहरण देखिये-
कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।

भरे भौंन में करत है, नैननु ही सों बात।।

भारतीय साहित्य में मुक्तक पद्यों के संग्रहों को प्रारम्भ में शतक, सप्तशती तथा हजारा के नाम से अभिहीत किया गया है। हिन्दी के रचनाकारों ने 'सतसई' शब्द का प्रयोग अधिक किया। सतसई शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' शब्द का विकृत रूप है। हिन्दी में संस्कृत-प्राकृत को ही आदर्श मानकर 'सतसई' लिखने की परम्परा विद्यमान रही। संस्कृत में भक्ति एवं स्तोत्र सम्बन्धी साहित्य के लिए 'सप्तशती' का प्रयोग होता था। दुर्गाशप्तसती, वैराग्य-शतक, विष्णु सहस्रनाम आदि इस प्रकार के ग्रन्थ हैं किन्तु ये मुक्तक रूप में नहीं हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मानना है कि भारत में आभीर जाति के आगमन के साथ ही उनके स्वच्छन्द और ऐहिकतामूलक जीवन का प्रभाव भारतीयों पर पड़ा और साधारण जीवन में व्याप्त प्रेम-भावनाओं, श्रृंगगार सम्बन्धी चेष्टाओं एवं दैनिक हास-परिहासपूर्ण क्रिया-व्यापारों का वर्णन ही इन 'सप्तशती' का विषय बनने लगा- इसका पहला प्रयास हाल कविकृत 'गाथा सप्तशती' के अन्तर्गत दिखाई देता है। यह प्राकृत भाषा में लिखित 700 आर्या छन्दों का संग्रह है। इसमें प्रणय के मार्मिक चित्र हैं। इसके पश्चात् सतसई साहित्य की परम्परा में भर्तृहरि कृत 'श्रृंगार शतक', अमरूक कृत 'अमरूक शतक', तदन्तर गोवर्द्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' आती हैं। 'आर्या सप्तशती' में श्रृंगार के संयोग-वियोग के चित्र संस्कृत के आर्या छन्द में लिखे गये हैं। संस्कृत साहित्य में सप्तशती ग्रन्थों में श्रृंगार रस की मार्मिक व्यंजना मिलती है। हिन्दी में लिखी गयी 'सतसई' को सूक्ति सतसई और श्रृंगार सतसई दो श्रेणियों में बाँटा जाता है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार सतसई श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी प्रेरणा से हिन्दी में अनेक 'सतसई' और 'हजारा' शीर्षक ग्रन्थ रचे गये। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि रामचरित मानस को छोड़कर इसपर सबसे अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि बिहारी सतसई एक लक्ष्य ग्रन्थ है, लक्षण नहीं। इसका समस्त रचना विधान रीतिबद्ध है। इसमें लगभग सभी प्रमुख अलंकार सहज रूप से समाविष्ट हैं। ध्वन्यात्मकता इसका प्रमुख गुण है। किसी भी दशा, मनोभाव या परिस्थिति का चित्रण करने में बिहारी सिद्धहस्त हैं। प्रत्येक शब्द का रूप, गुण, क्रिया के आधार पर अपना विशिष्ट अर्थ सौन्दर्य होता है। बिहारी शब्दों की इस अर्थवत्ता के प्रति बहुत जागरूक हैं। शब्दों के अनेक पर्याय होते हुए भी वस्तु विशेष के लिए प्रयुक्त वह पर्याय शब्द अत्यन्त सटीक होने से विवक्षित वस्तु को जिस प्रकार से प्रकट करता है उसे वहाँ कोई अन्य शब्द प्रकट नहीं कर सकता। बिहारी ने ऐसे कई शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे भाव वस्तु का बोध आसानी से होता है और भाषा की सामर्थ्य बढ़ जाती है, ऐसे शब्द अपने किसी पर्याय से नहीं बदले जा सकते। उदाहरणार्थ-

पूस-मास सुनि सखिनु पैं साई चलत सवारू।
गहि कर बीन-प्रबीन तिय राग्यौ रागु मलारू।।

पूस मास में नायक के विदेश जाने की बात सुनकर नायिका बीणा लेकर मल्हार राग गाना प्रारम्भ कर देती है ताकि वर्षा हो जाए और नायक का विदेश गमन स्थगित हो जाए। बीणा

बजाने में कुशल नायिका के लिए 'प्रवीण' विशेषण महत्वपूर्ण है। इसके स्थान पर कुशल, चतुर आदि शब्दों का प्रयोग सटीक नहीं बैठता। नायिका के भाव, अनुभाव और सौन्दर्य वर्णन में बिहारी अद्वितीय हैं। शुक्ल जी के शब्दों में 'बिहारी की रसव्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है। जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है-'

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय
सौंह करै भौंहनि हँसै, देन कहे नारि जाय

यहाँ पर 'सौंह करना', भौंहों में हँसना, देने के लिए कहना, नट जाना आदि सभी कार्य-व्यापार किसी विशेष उद्देश्य से चेष्टापूर्वक किए गए हैं।

बिहारी सतसई में आए अनेक दोहे 'गाथा सप्तशती', 'अमरूक शतक', 'आर्या सप्तशती' तथा अन्य पूर्ववर्ती कवियों के काव्य पर आधारित हैं, इस प्रकार के दोहों के आधार पर डॉ. गुप्त इन दोहों को अनुवाद कला का प्रमाण मानते हैं न कि काव्य कला का। बिहारी सतसई के आधार पर मतिराम ने 'मतिराम सतसई' बनाई किन्तु अध्ययन की गम्भीरता, चिन्तन की प्रौढ़ता एवं भाषाई अधिकार के क्षेत्र में 'मतिराम सतसई' की बिहारी सतसई से कोई तुलना नहीं। 'बिहारी सतसई' में मानव-मनोवृत्तियों के सहज, मनोरम चित्रों के अंकन के साथ-साथ तत्कालीन जन-जीवन का जीता-जागता चित्र भी उपस्थित है। निःसन्देह 'बिहारी सतसई' को सम्पूर्ण सतसई साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रीति सिद्ध कवि किसे कहते हैं? उत्तर दीजिये।

.....
.....
.....

2. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

क. बिहारी की रचना को .....कहा जाता है- (बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई)

ख. बिहारी .....काव्य धारा के कवि हैं- (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध)

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित रचनाओं में से सतसई परम्परा की सबसे पहली रचना कौन-सी है ? सही विकल्प का चुनाव करें -

(क) आर्या सप्तशती (ख) अमरूक शतक
(ग) गाथा सप्तशती (घ) भर्तृहरि शतक

12.4 श्रृंगारिक काव्य

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'श्रृंगार काल' नाम देते हैं। इस नाम के पीछे उनका आधार यही था कि इस काल में श्रृंगार रस से परिपूर्ण कविताओं की रचना ही अधिक हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी संकेत किया है कि 'वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 223) किन्तु 'श्रृंगार काल' नामकरण में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि इस युग में सिर्फ श्रृंगार रस की ही रचनाएँ नहीं हुई, बल्कि वीर, भक्ति, नीति, हास्य आदि विभिन्न विषयों पर भी काव्य रचनाएँ हुई।

रीतिकालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति श्रृंगार का प्राधान्य है। इस युग में श्रृंगारिकता का जो प्रबल वेग दिखाई देता है, इसके लिए तद्युगीन परिस्थितियाँ तो बहुत हद तक जिम्मेदार हैं, साथ ही संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं से चली आ रही मुक्तक काव्यों की एक ऐसी परम्परा का भी प्रभाव है जिसमें श्रृंगार रस का निर्बाध और स्वच्छन्द चित्रण विद्यमान है। राधा-कृष्ण आदि देवी-देवताओं की प्रणय-लीलाओं के माध्यम से श्रृंगार का खुलकर वर्णन हो रहा था। इस काल के कवियों ने राधा कन्हाई के सुमिरन के बहाने श्रृंगार रस का भरपूर चित्रण किया। बिहारी के अतिरिक्त देव, पद्माकर, भिखारीदास आदि कवियों ने श्रृंगार को समृद्धि दी। सामंतकालीन वातावरण में वैभव विलास की अधिकता थी। सर्वत्र रसिकता विद्यमान.....। ऐसे सामन्ती परिवेश में पालन-पोषण होने के कारण सौन्दर्य के वर्णन में कवियों की दृष्टि 'श्रृंगार को सार किशोर-किशोरी' पर अटक गई। शील एवं सौन्दर्य से सम्पन्न अलौकिक सत्ता रूप-गुण सम्पन्न नारी की काम चेष्टाओं आदि में सिमट गई। बिहारी रचित यह दोहा इस प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है-

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दूति करि अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयागु।।

अर्थात् तीर्थ व्यर्थ है। श्रीकृष्ण और राधा के शरीर की आभा केलि-क्रीड़ाओं में ही प्रयाग है।

तत्कालीन परिवेश और दरबारी संस्कृति से बिहारी गहरे जुड़े हुए थे। श्रृंगार कामुकता का पर्याय बन गया था। ऐसे में विलासी जनों के योग्य कामोद्दीपक एवं मनोरंजक उन कलित, ललित एवं कुसुमित मालती कुंजों का वर्णन कर बिहारी ने तत्कालीन जीवन में व्याप्त विलासिता का जीता-जागता चित्र अंकित किया है-

घाम घरीक निवारियै कलित-ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर-तमाल-तरु, मिलित मालती कुंज।।

फारसी संस्कृति और साहित्य की श्रृंगारिकता का प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा। ऊहात्मक शैली में लिखे गए दोहे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। बिहारी के प्रेम वर्णन का मुख्य आधार शारीरिक

सौन्दर्य है। उनके लिए प्रेम जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है, क्रीड़ा मात्र है, जो श्रृंगार के बाहरी पक्ष पर अधिक केन्द्रित है।

12.4.1 संयोग श्रृंगार

साहित्य में श्रृंगार रस को रसराज कहा जाता है। इसका स्थायी भाव रति है। श्रृंगार के दो भेद माने गये हैं- संयोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार या वियोग श्रृंगार बिहारी ने श्रृंगार के संयोग पक्ष का वर्णन करते हुए नायिका का नखशिख वर्णन, प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ, विभिन्न क्रीड़ा-व्यापारों, काम-चेष्टाओं, अठखेलियों, विभिन्न प्रकार की रति-क्रीड़ाओं आदि का मनोयोग से वर्णन किया है। बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिकाओं के अभिसार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में अपने प्रेमी से मिलने जाती नायिका शुक्लाभिसारिका और कृष्णपक्ष की रात्रि में प्रेमी के समीप अभिसार हेतु जाती नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में प्रिय मिलन को जाती नायिका का सुन्दर वर्णन बिहारी ने किया है -

जुवति जोन्ह में मिलि गईं नैंकु न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली चली संग जाइ।।

गौरवर्ण की नायिका चाँदनी के प्रकाश में एकाकार हो गई, किसी को दिखाई नहीं पड़ी, साथ चलने वाली सखी भी उसकी सुगन्ध के सहारे चल रही है। अभिसार के उपरान्त लौटते हुए मार्ग में चन्द्रमा के प्रकाश से उत्पन्न उसकी घबराहट, भयभीत होने, छिपने आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन निम्नांकित दोहे में देखा जा सकता है-

अरी खरी सरपट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगे मधुपनि लई भागनु गली अंधेरि।।

बिहारी ने संयोग वर्णन में उन बाहरी व्यापारों का भी सुदर वर्णन किया है, जिससे नायक-नायिका परस्पर आनन्दानुभूति पाते हैं। प्रिय की सभी वस्तुएँ व सभी कार्य प्रियतमा के लिए सुखद हैं। प्रिय द्वारा पतंग उड़ाये जाने पर प्रिया पतंग की परछाई छूती हुई, आँगन में पगली-सी दौड़ती-फिरती है-

उड़ति गुड़ी लखी ललन की, अँगना अँगना माँह।
बौरि लौं दौरति फिरति, हुवति छबीली छाँह।।

इस प्रकार बिहारी ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही भावोत्तेजक, मनोरंजक एवं वासनात्मक रूप प्रकट किया है।

12.4.2 विप्रलभ या वियोग श्रृंगार

बिहारी ने वियोग के विभिन्न भेदों एवं विभिन्न काम- दशाओं की बड़ी ही आकर्षक व सजीव अभिव्यक्ति दी है। इनके वियोग वर्णन में फारसी की उहात्मक शैली और सूफी ढंग की प्रेम दशाओं का पूरा-पूरा प्रभाव है। वियोग की सामान्यतः चार दशाएँ मानी गयी हैं-

1. पूर्व राग 2. मान 3. प्रवास और 4. करुण

वियोग से तात्पर्य है- दो प्रेमियों का विछोह। बिहारी ने वियोग की इन सभी दशाओं का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। 'पूर्व राग' से तात्पर्य है- प्रिय मिलन से पहले उसके गुणों को सुनकर या उसका रूप सौन्दर्य देखकर उसके प्रति हृदय में जो प्रेम व आकर्षण होता है परन्तु किसी कारणवश मिलन सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में नायिका की जो स्थिति होती है वह पूर्व राग है। उसका सजीव चित्रण बिहारी द्वारा निम्न रूप में किया गया है -

हरि-छवि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैंन।
भरत, ढरत, बूढ़त, तरत, रहत घरी लौं नैन।।

अर्थात जब से नायिका के नेत्र प्रिय की छवि रूपी जल में बड़े हैं तब से क्षणभर भी उससे नहीं बिछुड़ते। समय-सूचक कशेरी की भाँति निरन्तर भरते-ढरते, डूबते-उतराते रहते हैं। वियोग के दूसरे भेद 'मान' को दो भागों में बाँटा गया है- प्रणय मान और ईर्ष्या मान। 'प्रणय मान' में नायक-नायिका छोटी-सी बात पर एक-दूसरे से रूठकर विरह की आग में जलते हैं। जबकि 'ईर्ष्या मान' में प्रिय को अन्य सुन्दरियों के प्रति आशक्त देख नायिका के हृदय में नायक के प्रति क्रोध होता है। बिहारी द्वारा अंकित 'प्रणय मान' का सुदर उदाहरण द्रष्टव्य है- जिसमें नायक व नायिका दोनों ही रूप सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं और गर्वित हैं। दोनों ही यह ठान लेते हैं कि देखें पहले कौन मनाता है, कौन मान छोड़ता है और कौन पहले मानता है -

दोऊ अधिकाई भरे एकै गौं गहराई।
कौनु मनावै, को मनै, माने मन ठहराई।।

'प्रवास' सम्बन्धी विरह का वर्णन बिहारी सत्सई में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस तरह के वर्णन में बिहारी कुशल हैं। जाड़े की रात में नायिका प्रवासी प्रियतम की विरहाग्नि में जल रही है, उसकी सखियाँ स्नेहवश उसके समीप जाने के लिए गीले कपड़ों की ओट लेती हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है-

आड़े दै आलै बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस, सखी सबै ढिंग जाति।।

बिहारी ने नायक के प्रवास से उत्पन्न नायिका के विरह का वर्णन करते हुए उसके अतिशय कष्ट का चित्रण करने के लिए अतिशयोक्तियों का सहारा लिया है। कहीं नायिका विरह में इतनी कृशकाय हो गई है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूंढ पा रही है तो कहीं विरहाग्नि में जलती नायिका के ऊपर गुलाब जल की शीशी उड़ेली जाती है किन्तु वह नायिका के शरीर में गिरने से पहले ही उसकी विरहाग्नि की लपटों से सूख जाता है; उदाहरणार्थ –

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़तु नीचु।
दीने हूँ चसमा चखनु चहै लहै ना मीचु।।

इसी प्रकार –

औंधाई सीसी सु लखि बिरह-बरति बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छीटौं छुई न गात॥

बिहारी का विरह-जन्य काम दशाओं का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है। साधारणतया दस काम दशाएँ मानी गई हैं- जिन्हें चिंता, अभिलाषा, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण नाम दिए गए हैं। इन सभी दशाओं का वर्णन बिहारी ने अपने काव्य में किया है।

12.5 भक्ति एवं नीति काव्य

बिहारी का संबंध न किसी भक्ति सम्प्रदाय से था न किसी मतवाद से। फिर भी कुछ विद्वानों द्वारा उन्हें विभिन्न मत-मतान्तरों से जोड़ा गया है; उदाहरणार्थ डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने इन्हें हरिदासी सम्प्रदाय से प्रभावित व निम्बार्क मत का अनुयायी बताया है। हरिदासी सम्प्रदाय में युगलोपासना का भाव बड़ा महत्वपूर्ण है। बिहारी के इस दोहे में यह भाव निरूपित है-

नितप्रति एकत ही रहत वैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक॥

बिहारी ने कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्व दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में यह विशेषता देखने को मिलती है; उदाहरणार्थ -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

और निम्नलिखित दोहे के आधार पर बिहारी को अद्वैतवादी समझा जाता है -

मैं समुझयौ निराधार यह जग काचों काँच सौं।

इस प्रकार बिहारी पर अनेक मतों का प्रभाव दिखाया जाता है जो उनके किसी एक मत विशेष के अनुयायी न होने को ही बल देता है। वस्तुतः बिहारी को राम-कृष्ण, सगुण-निर्गुण आदि सभी स्वीकार्य थे। बिहारी ने इन सभी को सामान्य भाव में ग्रहण किया है। भक्ति संबंधी दोहों में कहीं बिहारी ने 'मैं समुझयौ निराधार यह जग काँचो काँच सौ' कहकर संसार को कच्चे काँच के समान क्षणभंगुर कहा है, तो ''एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ'' कहकर इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसी अलौकिक रूप की आभा को प्रतिम्बित पाया है। जिस प्रकार सूरदास 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको' कहकर स्वयं को महापापी बताकर श्री कृष्ण भक्ति की चाह रखते हैं। उसी प्रकार बिहारी भी कहते हैं कि हे मुरारि! अब देखना है कि आपका विरद किस प्रकार कायम रहता है क्योंकि आप एक सामान्य पापी गिद्ध को तारकर, मुझ महापापी से आकर उलझे हो। उदाहरणार्थ -

कौन भाँति रहिहै विरदु, अब देखिबी मुरारि।

बीधे मोसों आइकै गीधे गीधहिं तारि ।।

तुलसी की भाँति दैन्य का अपार सागर भी बिहारी के हृदय में हिलोरें भरता है, जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है –

हरि कीजत विनती यहै तुमसौ बार हजार ।
जिहिं तिहिं भाँति डयौं रहयौ पयौं यही दरबार ।।

बिहारी का ध्यान भक्ति भावना से अधिक उक्ति वैचित्र्य और वाणी कौशल पर दिखाई देता है। भक्ति के साथ मनोरम कवित्व का उदाहरण द्रष्टव्य है –

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल ।।

अर्थात् संसार चाहे मेरी कितनी निन्दा करे किन्तु हे दीनदयाल मैं अपनी बुराइयाँ न छोडूंगा क्योंकि आप त्रिभंगी हैं। मेरे सीधे-सरल चित्त में निवास करने में आपको कष्ट होगा, अतः मेरा टेढ़ा (बुरा) रहना ही श्रेयस्कर है। बिहारी सहित सभी रीतिकालीन कवियों के लिए कहावत है-

काल्हि के सुकवि जो पै रीझि है तो कविताई ।
न तू राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है ।

बिहारी की श्रृंगारपूर्ण भक्ति के विषय में भी डॉ. नगेन्द्र द्वारा रीतिकालीन कवियों के लिए कही गई ये बात बिहारी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है - ''वास्तव में यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठे होंगे तो राधाकृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरू मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी।'' बिहारी द्वारा भक्तिपरक दोहों के साथ नीति विषयक दोहों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बिहारी सुख-दुख को समान रूप से ग्रहण करने के लिए कहते हैं। सामान्यतः व्यक्ति दुख में गहरी साँसें लेता है और सुख में ईश्वर को भूल जाता है -

दीरघ साँस न लेई दुःख, सुख साईहि न भूल । दई-दई क्यों करत है, दई-दई सु कबूलि ।।

बिहारी ऐसे स्वर्ण धन की अधिकता को मनुष्य के लिए हानिकारक मानते हैं, जो उसे घमण्ड से परिपूर्ण करने या पागल बना देने में सहायक होता है -

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय । या खाये बौराय जग, या पाये बौराय ।।

बिहारी के काव्य में सामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक दोहे विद्यमान हैं। जो नीति के साथ-साथ चमत्कारपूर्ण भी हैं, और उनमें जीवनानुभव की एक विशाल अमूल्य राशि संचित है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बिहारी के काव्य में मुख्य रूप से .....का वर्णन हुआ है।

2. वियोग श्रृंगार के मुख्य भेद कौन-कौन से हैं ? उचित शब्द छाँटकर लिखिए -

(क) .....(ख) .....

(ग) .....(घ) .....

12.6 संरचना शिल्प

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। तत्कालीन परिवेशानुकूल बिहारी साहित्य का शिल्प पक्ष बेजोड़ बन पड़ा है। ब्रज भाषा पर असाधारण अधिकार, लघु कलेवर युक्त छंद, शब्दों का सटीक प्रयोग, भाषा की समाहार शक्ति, रसों की अनूठी व्यंजना, भाषा में चमत्कार प्रदर्शन, उक्ति वैचित्र्य ये सब विशेषताएँ बिहारी की कलागत उत्कृष्टता को ही दर्शाती हैं। इन्हीं सब आधारों पर बात करते हुए आप बिहारी के संरचना शिल्प को निम्नांकित रूप में समझ सकते हैं -

12.6.1 काव्य रूप

बिहारी अपने सरस मुक्तकों के कारण प्रसिद्ध हैं। अपने वक्तव्य को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बिहारी ने तत्कालीन दरबारी परिवेश में प्रबन्ध रूप में रचना न कर मुक्तक शैली को अपनाया। आचार्य शुक्ल ने भी मुक्तकों को सभा-समाज में लिए अधिक उपयुक्त बताया है। सवैय्या, घनाक्षरी छंद का प्रयोग न करके बिहारी ने दोहा छंद का प्रयोग अपनी रचना में किया है। दोहा, छंद को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि दोहा अर्द्ध सम छंद है। इसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके चारों चरणों में अड़तालीस मात्राएँ होती हैं।

मुक्तक में पूर्वापर किसी छंद से लगाव न होकर भी वह पूर्ण रूपेण स्वतंत्र होकर अपना अर्थ व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसीलिए बिहारी ने श्रृंगार रस की जितनी भी अवस्थाएँ हो सकती हैं उनका वर्णन दोहों के माध्यम से किया है। जिनके द्वारा अनुभावों की चमत्कृत कर देने वाली योजना दृष्टव्य है -

भौंहनि त्रासति, मुँह नरति, आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करू कूँची आगैं आवति जाति ।।

यहाँ पर अनुभावों की सुन्दर व्यंजना है। बिहारी के मुक्तक काव्य की कुछ और विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं -

1. मुक्तक काव्य में बिहारी ने भाषा और कल्पना की समाहार शक्ति के प्रयोग से बड़े भावों को उत्कर्ष प्रदान किया गया है -

घर घर डोलत दीन हैं, जन-जन जाचतु जाइ।
दियै लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ।।

लोभ रूपी चश्मे की कल्पना से इस दोहे में भावों की उत्कृष्टता द्रष्टव्य है।

2. बिहारी के मुक्तक काव्य में पग-पग पर काव्य सौन्दर्य परिलक्षित होता है। बिहारी की वाणी अलंकारमय और वक्रता से मंडित है।

3. यथा स्थान सूक्तियों का अनुपम प्रयोग बिहारी मुक्तक काव्य की विशेषता है –

'मुनि गुनि सबकें कहें निगुनि गुनी न होतु।'

क. वह चितवनी कहु और जिहि बस होतु सुजान।

ख. बड़े न दूजै गुननू बिनु बिरद-बड़ाई पाइ

ग. संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध

4. ऊहात्मक शैली में लिखे गये मुक्तक काव्य ने अत्यधिक लोकप्रिय बनाया है –

'आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ कि राति, इत आवत चली जात उत चली छसातक हाथ, साहसु ककै, सनेह बस सखी सबै ढिंग जाति'

5. सामन्ती समाज और उसकी विलासप्रियता तथा तत्कालीन जन जीवन को बिहारी के मुक्तकों द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहिं काल।
अली कली ही सों बिन्ध्यो,आगे कौन हवाल।।

इसी प्रकार -
दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुख-द्वंद्व।
अधिक अधेरो जग करत, मिलु पावस रवि चन्दु।।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि छोटे-छोटे मुक्तक छंद में बिहारी ने जितने भाव भरे हैं वैसी भाव संयोजना अन्यत्र दुर्लभ है।

12.6.2 काव्य भाषा

बिहारी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है। यह इस काल की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। ब्रज भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। बिहारी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, 'उनको शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। शब्द और

वर्ण उनके दोहों में नगों के समान जड़े हैं और रत्नों की आभा बिखेरते हैं। शब्द को माँजने, चमकाने, मोड़ने और सँवारने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी रचना में ब्रजभाषा अपनी प्रौढ़ता और भाव सम्पन्नता में इठलाती हुई चलती है। वह लय और गति, संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है।' इसका उदाहरण निम्नांकित दोहों में देखा जा सकता है-

अंग-अंग नग जगगति, दीप सिखा-सी देह।
दीया बुझाए हूँ रहै, बड़ो उजेरो गेय।।

इसी प्रकार
रस सिंगार मंजन किये, कंजन मंजन दैन।
अंजन रंजन हूँ बिना, खंजन, गंजन नैन।।

उपर्युक्त दोहों से स्पष्ट है कि भाव, अनुभूति और चेतना को बिहारी किस प्रकार मार्मिक शब्दों और प्रभावशाली बिम्बों में प्रकट करने की क्षमता रखते हैं।

बिहारी ध्वनि के मर्मज्ञ थे, इसलिए उनकी भाषा में व्यंजना के एक से एक उदाहरण मिलते हैं। लक्षणा व्यंजना का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

कत सकुचत निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैन।
कहा करौ जो जाय ये, लगैं लगौंहैं नैन।।

प्रस्तुत दोहे का लक्ष्यार्थ यह है कि तुम स्वयं दोषी हो तुम्हें न भय है, न संकोच। नेत्रों का कुछ भी दोष नहीं अर्थात् तुम बड़े बेहया हो।

बिहारी की रचनाओं में कई भाषाओं और बोलियों के शब्द पाए जाते हैं। शब्दों का यह वैविध्य उनकी भाषा समृद्धि और गतिशीलता का परिचायक है ही, उनके विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का भी सूचक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उनमें हिन्दी की अनेक बोलियों, कई प्रादेशिक भाषाओं और अरबी, फारसी के असंख्य शब्द स्वाभाविकता के साथ समाहित हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने उनकी भाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

12.6.3 अलंकार विधान

बिहारी काव्य की अलंकार योजना अनुपम है। उन्होंने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। 'भूषण बिनु न बिराजहिं, कविता बनिता मित्त' सिर्फ सिद्धान्त वाक्य न होकर प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों द्वारा व्यवहार में लाया गया। चमत्कार-प्रदर्शन एवं वाणी कौशल दिखाने की प्रबल प्रवृत्ति के वशीभूत बिहारी ने भी अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग कर प्रस्तुत-अप्रस्तुत भावों की अनूठी व्यंजना की है। श्लेष बिहारी का प्रिय अलंकार है। काव्य में जहाँ पर शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है, किन्तु कवि प्रयुक्त शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर अर्थ का चमत्कार समाप्त हो जाता है।

निम्नांकित दोहे में झाँई, स्यामु, हरित दुति शब्दों के तीन-तीन अर्थ निकलते हैं, सिर्फ 'स्याम' शब्द के स्थान पर भी यदि कृष्ण या मुरारी शब्द रख दें तो पूरे दोहे का चमत्कार खत्म हो जाता है-

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरिक सोई।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होई॥

शब्दालंकारों का प्रयोग बिहारी ने खूब किया है। उनके दोहों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा आदि अलंकारों के प्रसंगानुकूल सुन्दर चित्रण से कार्व्य सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

विरह वेदना के अधिक्य के वर्णन में बिहारी ने अतिशयोक्ति अलंकार की सुन्दर व्यंजना की है। जैसे- विरह-विदग्ध नायिका के ऊपर गुलाब-जल की शीशी उड़ेलने पर उसके बीच में ही सूख जाने से नायिका के ऊपर न पड़ने या ऐसी ही अन्य विरहिणियों के शीत में भी गरमी का अनुभव करने को बिहारी ने अतिशयमूलक अलंकारों के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है।

जैसे-

औंधाई सीसी सु लाखि बिरह-बरति बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छीटौं हुई न गात॥

बिहारी का प्रत्येक दोहा अलंकारों के अप्रतिम विधान से ओत-प्रोत है। नायिका के अंग-प्रत्यंग के सादृश्य पर अलंकारों की व्यापक योजना की है। कहीं नायिका के नेत्रों से हिरनी के नेत्रों की समता की है। फिर हिरनी के नेत्रों से नायिका के नेत्रों को श्रेष्ठ कहकर व्यतिरेक अलंकार की सृष्टि कर डाली है-

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ए नैन॥

उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे भी बिहारी ने बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। नायिका की सफेद साड़ी से ढका उसके कानों में हिलता हुआ कर्णभूषण उत्प्रेक्षा की है कि मानो प्रभात में सूर्य का प्रतिबिम्ब गंगा जी के हिलते हुए जल में पड़ रहा हो-

लसतु सेत सारी-ढप्यौ, तरह तर्यौना कान।
पर्यौ मनौ सुरसरि-सलिल, रवि प्रतिबिंबु विहान॥

इस प्रकार अनेक दोहे ऐसे हैं जिनसे बिहारी की गूढ़ दृष्टि और कल्पना की ऊँचाइयों का परिचय मिलता है। अलंकार योजना में कहीं-कहीं बिहारी की चमत्कारप्रियता व कल्पनाधिक्य अवश्य देखने को मिलता है किन्तु वास्तव में बिहारी की अलंकार शास्त्र पर गहरी पैठ है, जिससे अलंकारों का प्रयोग अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी भावाभिव्यंजना में पूर्णतः सफल है और काव्य में सरसता और प्रभावोत्पादकता बराबर बनी रहती है।

12.6.4 छंद विधान

छन्द भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टि रूप प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है- जिसमें अक्षरों की संख्या में वर्णों की सत्ता निहित होती है, वह छन्द कहलाता है। यह काव्य में गति और लय की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बिहारी का सम्पूर्ण काव्य दरबारी मनोवृत्ति पर आधारित है। मुक्तक काव्य शैली में प्रत्येक पद्य अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। बिहारी ने कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि में से दोहा छंद को काव्याभिव्यक्ति के लिए चुना। यद्यपि इसमें सवैया, कुंडलिया आदि छंदों के समान विषय-विस्तार की संभावना नहीं होती तथापि अपनी भाषा की सामासिकता और कल्पना की समाहार शक्ति तथा उक्ति वैचित्र्य की क्षमता को परख कर बिहारी ने दोहा छंद चुना जो थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने व शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता रखता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. बिहारी ने अपनी रचना में कौन-सा काव्य रूप अपनाया है ?

(क) प्रबंध (ख) मुक्तक

(ग) कथा (घ) चम्पू

2. 'दोहा' छंद की दो विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

12.7 संदर्भ सहित व्याख्या

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ।।

शब्दार्थ- भवबाधा = सांसारिक बाधाएँ। सोय = वही। झाईं = 1. परछाई 2. झलक 3. ध्यान 4. चर्मरोग। स्याम = 1. कृष्ण 2. ताप, बुराई, दुःख आदि। 3. साँवला। हरित दुति = 1. हरा रंग या कांति 2. हरा-भरा अर्थात् प्रसन्न 3. तेज - रहित।

प्रसंग- सतसई की निर्विघ्न समाप्ति के लिए बिहारी ने राधा का स्मरण मंगलाचरण में किया है। इस दोहे से बिहारी के राधाबल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने का संकेत मिलता है।

व्याख्या प्रथम: जिसके शरीर की छाया पड़ने से कृष्ण हरी कांति वाले हो जाते हैं, वही चतुर राधा; मेरी संसार की अड़चनों को अर्थात् शारीरिक, दैवी और धनादि सम्बन्धी विघ्नों को दूर

करें। राधा का रंग गौर वर्ण है, जो काले (श्याम) वर्ण वाले कृष्ण के शरीर के रंग से मिलकर हरा रंग होने का (पीला+नीला= हरा रंग) आभास देता है।

द्वितीय: वह नागरी राधा, जिसके शरीर की झलक पड़ने से कृष्ण तेजरहित हो जाते हैं, मेरी दरिद्रता, दीनता, हीनता आदि का निवारण करें। यहाँ पर कवि का आशय राधा की अपार महिमा बताना है। राधा के सामने कृष्ण की प्रतिभा फीकी पड़ जाती है।

तृतीय: वह राधा नागरी, जिसके शरीर का ध्यान करने से पाप, बुराई, दुःख आदि समस्त क्लेश दूर होकर पुण्य, अच्छाई, सुख इत्यादि उदय होते हैं, मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें। भाव यह है कि काव्य-परिपाटी के अनुसार पाप, बुराई आदि का रंग काला और पुण्य आदि का रंग उज्ज्वल माना गया है।

विशेष: 1. अलंकार- 'झाईं', 'स्यामु' और 'हरित' शब्द अनेक अर्थ देते हैं, अतः श्लेष अलंकार है। 'हरित-दुति' में 'हरी है द्युति जिसकी' अर्थ लेने पर युक्ति द्वारा अर्थ का समर्थन होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

2. 'हरित दुति' (हरा होना) मुहावरे का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है।

3. बिहारी की काव्य-प्रतिभा एवं भाषा और भाषाधिकार का परिचय इस दोहे में मिल जाता है। समग्र रूप में यह दोहा कविवर बिहारीलाल की उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है।

अजौं तरौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत इक अंग ।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतन के संग ।।

शब्दार्थ: अजौं = आज भी। तरौना = कान का आभूषण, इसे कर्णफूल भी कहते हैं। (अथवा तरौ नाही = तरा नहीं, संसार के कष्टों से छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं की) स्रुति = कान, वेद। सेवत = वेद पाठ करते हुए, कानों के पास रहते हुए। इक अंग = निरन्तर, एकरस होकर। नाक = नासिका, स्वर्ण। बेसरि = साधारण पुरुष, नाक का आभूषण बुलाक, जिसमें मोती लगा रहता है। लह्यौ = ¬प्राप्त कर लिया। मुकतन = मोतियों का, मुक्त पुरुषों का।

प्रसंग: निरन्तर वेद-पाठ करने की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक अच्छा है। इस तथ्य को तरौना (त्रयौना) तथा बेसर (बुलाक) के उदाहरण द्वारा समझाते हुए रीति सिद्ध कवि बिहारीलाल कहते हैं -

व्याख्या: इस दोहे में अत्यन्त सुन्दर श्लेष चमत्कार होने से इसकी दो व्याख्याएँ हैं-

प्रथम (तरौना, कर्ण-आभूषण): तरौना अथवा तर्यौना (कान का आभूषण- कर्णफूल या तरकी) कान का निरन्तर सेवन करने पर आज भी तर्यौना ही रहा। कानों में नीचे ही पड़ा रहा, ऊपर नहीं आ सका। नाक आगे और कान पीछे हैं। किन्तु बेसरि (नाक का आभूषण बुलाक

जिसमें मोती लटका रहता है) ने मोतियों के साथ रहने से आगे का स्थान प्राप्त कर लिया अर्थात् उन्नति कर ली, आगे आ गया।

द्वितीय (सत्संग के पक्ष में): एकरस होकर निरन्तर वेद का पाठ करने वाला व्यक्ति संसार सागर से अपना उद्धार नहीं कर सका अथवा स्वर्ग प्राप्त करने में असफल रहा, किन्तु साधारण मनुष्य ने मुक्त (जीवन-मुक्त, जो जीवित रहते हुए भी संसार के आकर्षण से मुक्त रहते हैं) पुरुषों का सत्संग प्राप्त करके स्वर्ग का निवास प्राप्त कर लिया।

विशेष: 1. अलंकार: 'स्रुति-सेवत, वास-बेसरि-बसि' में अनुप्रास तथा 'तरौना ही, स्रुति, नाक, मुकतन' में श्लेष अलंकार है।

2. वेद-पाठ की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक लाभदायक है। वेद-पाठ चाहे जीवन-पर्यन्त करता रहे, तब भी मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता और सत्संग चाहे थोड़े समय का ही हो, वह भी अत्यधिक लाभदायक है।

3. इस दोहे से प्रतीत होता है कि वैष्णव-काल के अन्य कवियों की तरह बिहारीलाल सत्संगति के प्रभाव को सर्वोच्च मानते हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं-

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

4. बेसरि: नाक का आभूषण विशेष, जैसे लोंग, बुलाक, नथ आदि। दूसरा अर्थ है- महाअधम मनुष्य।

5. तरौना: कान का आभूषण विशेष, जैसे- कर्णफूल, कुण्डल, बुन्दे आदि। दूसरा अर्थ है- उद्धार नहीं हुआ।

कहत, नटत, रीझत, मिलत खिझत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

शब्दार्थ: कहत = कहते हैं। नटत = मना करते हैं। रीझत = प्रसन्न होते हैं। खीझत = रुष्ट होते हैं। मिलत = मिलते हैं। खिलत = हर्षोत्फुल्ल होते हैं। लजियात = लज्जा का अनुभव करते हैं। भरे = गुरुजन या पूज्य नर-नारियों से भरे। भौन = भवन।

प्रसंग: किसी समारोह के अवसर पर घर में स्त्री-पुरुषों की भीड़ होने पर भी नायक-नायिका परस्पर बातें कर रहे हैं। परन्तु ये बातें वचन से नहीं, नयनों के संकेतों से हो रही है। हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कराने का वर्णन इस दोहे में सुन्दरता के साथ व्यक्त हुआ है -

व्याख्या: नायक कहता है अर्थात् अभिसार के लिए नायिका से प्रस्ताव करता है। यह प्रस्ताव आँख के इशारे से होता है। नयन के संकेत से ही नायिका इसे ठुकरा देती है। नायिका की यह अस्वीकृत मुद्रा भी नायक के मन को भा गयी है और वह रीझ उठता है। उसके इस भाव पर नायिका खीझती है। परन्तु जब दोनों के नेत्र मिलते हैं तो वे हर्ष से खिल उठते हैं। पुनः गुरुजन की

उपस्थिति का स्मरण होने पर उन्हें लाज आती है कि यदि किसी ने उनकी यह सांकेतिक प्रेम-लीला देख ली होगी तो वे लोग क्या सोचेंगे? इस प्रकार नायक नायक और नायिका भीड़ भरे घर में भी आँखों ही आँखों में सारी बातें कर लेते हैं!

विशेष: 1. अलंकार- 'नैनों से बात करने' में विभावना तथा 'भरे-भौन' में अनुप्रास अलंकार है।

2. ऐसे ही दोहों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। एक साथ सारी क्रियाओं- कहना, अस्वीकार कर देना, रीझना, खीझना, नेत्र मिलना, हर्षित होना तथा लजाना आदि का समावेश सचमुच ही बिहारी के कौशल का द्योतक है।

3. व्यंजना शब्द-शक्ति का समावेश है। अनुभाव दृष्टव्य हैं।

4. भावसाम्य:

''व्रतो निषेध तश्चैव कुप्यतस्था।''
नयनैरेव कुरुतो वार्ता तौ दम्पती रसात्।। (यशवन्तराय- यशोभूषण)

जब-जब वै सुधि कीजियै, तब-तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहै, आँखों लागति नाहिं।।

शब्दार्थ: वै = वे, नायक (श्रीकृष्ण), सुधि कीजियै = स्मरण किये जाते हैं, उनकी स्मृति होती है। सुधि = चेतना, होश, बुद्धि। जाहिं = चली जाती हैं, खो जाती हैं। आँखिन = उनके नेत्रों के ध्यान में। आँखि लगी रहै = मेरी आँखें तल्लीन रहती हैं। मन में उनका ही ध्यान लगा रहता है। आँखों लागति नाहिं = आँखें भी नहीं लगतीं, नींद भी नहीं आती।

प्रसंग: राधा कृष्ण के वियोग में उनके सुन्दर नेत्रों का स्मरण किया करती हैं। अपनी स्मृति दशा का वर्णन करती हुई राधा सखी से कहती है-

व्याख्या: जब-जब उनकी (श्रीकृष्ण) की या उनकी आँखों की सुधि आती है तब-तब (स्मरण-शक्तिजनित तन्मयता के कारण) हृदय की सुध-बुध (चेतना) जाती रहती है। उनकी आँखों के ध्यान में मेरे हृदय की आँखें भी लगी रहती हैं, अर्थात् नींद नहीं आती, किन्तु वे बाहरी आखें नहीं लगती।

भाव यह है कि हे सखि। जब-जब मैं प्यारे के सुन्दर नेत्रों का स्मरण करती हूँ, तब-तब मेरी स्मृति जाती रहती है। मेरी आँखें उन्हीं आँखों से लगकर रह जाती हैं, ऐसी दशा हो जाती है कि नींद भी नहीं आती।

विशेष: 1. अलंकार- 'सब-सुधि' में अनुप्रास, 'जब-जब, तब-तब' में वीप्सा, 'आँखिन-आँखि' में सभंगपदयमक तथा 'आँखिन नाहिं' में विरोधाभास अलंकार है। 'जब-जब, तब-तब' में ध्वनिसाम्य है।

कब कौ टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नायक जग-बाइ।।

शब्दार्थ: टेरत = पुकार रहा हूँ। सहाइ = सहायक। जग बाइ = संसार की हवा।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में भगवान को उलाहना या उपालम्भ देते हुए भक्त कहता है-

व्याख्या: मैं कब से (बहुत समय से) दीन होकर आपकी विनती कर रहा हूँ, किन्तु हे स्याम! आप मेरी सहायता नहीं करते (यह बात आपके प्रचलित चरित्र के विरुद्ध है। आप तो भक्त की पुकार पर तुरन्त नंगे पैर दौड़ आते थे)। ऐसा लगता है कि हे जगत के स्वामी और जगत के गुरु, भगवान कृष्ण ! तुम्हें भी संसार की हवा लग गयी है अर्थात् बदलते हुए समय के साथ तुमने भी अपना आचरण बदल लिया है।

विशेष: 1. अलंकार: द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा एवं 'स्याम-सहाय' 'जगत-जग' में अनुप्रास तथा 'तुमहूँ लागी'.... जग-बाइ' में लोकोक्ति अलंकार है।

2. यह दोहा बिहारी के समसामयिक राजा-रईसों और नवाब-बादशाहों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। उस समय दीन-दरिद्र आज के समान ही सहायता के लिए पुकारते होंगे, पर वे बिलकुल ध्यान नहीं देते होंगे।

तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।

शब्दार्थ- तन्त्रीनाद = वीणा आदि के मधुर स्वर, संगीत से आनन्द की अनुभूति। कवित्त-रस = काव्य रस। सरस राग = रस युक्त अनुराग। अनबूड़े = बहुत कम ज्ञान रखने वाले। जे बूड़े सब अंग = पूरी तरह डूब गये अर्थात् पूर्ण ज्ञान रखने वाले।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में काव्य आदि ललित कलाओं के प्रति कवि की निष्ठा का कथन है।

व्याख्या: वीणा की झनकार, कविता का रस, मधुर राग और प्रीति के रस में जो सर्वांग डूब गये वे ही सफल हुए। जो पूर्णरूप से मग्न नहीं हुए वे असफल रहे।

कहने का भाव यह है कि जो इसमें डूब गये, रस लेने लगे अर्थात् जिनको आनन्द आने लगा वे तो ठीक हैं, नही तो इनके पास नहीं आना चाहिए, इनमें यत्किंचित प्रवृत्त होते हैं, वे असफल रहते हैं, किन्तु जो पूर्णतः मग्न होते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

विशेष: 1. अलंकार- 'राग-रति-रंग' में अनुप्रास, 'अनबूड़े-बूड़े', 'रस-सरस' में सभंगपद यमक, 'अनबूड़े..... सब अंग' में विरोधाभास तथा 'बड़े-बूड़े' में वीप्सा अलंकार है। बिना डूबने वाला डूब गया और सब अंग से डूबने वाला पार हो गया- यह अर्थ करने पर विरोध है। वास्तविक अर्थ है जो पूर्ण रूप से तन्मय नहीं हुए, वे असफल हो गये। जो सम्पूर्ण रूप से तन्मय हुए, उन्हें सफलता मिली। यह अर्थ होने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

2. ललित कलाओं का आनन्द अद्वितीय है। वह ब्रह्मानन्द से भी महान् है।

3. भावसाम्य: ललित कलाओं से हीन व्यक्ति का जीवन पशु समान है। एक संस्कृत विद्वान ने लिखा है-

साहित्य-संगीत-कला विहीनाः।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनाः।।

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी के वियोग श्रृंगार वर्णन की विशेषताएँ 5-6 पंक्तियों में लिखिए।

.....
.....
.....
.....

2. बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचारों को अपने शब्दों में लिखिए।

.....
.....
.....
.....

12.8 सारांश

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि और रीतिसिद्ध परम्परा के अग्रगण्य रचनाकाल हैं। बिहारी की प्रसिद्धि का आधार उनका एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' है, जो 'गाथा सप्तशती', 'आर्या शप्तशती' व 'अमरूक शप्तशती' आदि ग्रंथों की प्रेरणा से हिन्दी में निर्मित एक उत्कृष्ट मुक्तक काव्य है। बिहारी सतसई को विश्व में एक अद्वितीय ग्रंथ मानते हुए ग्रियसर्न ने कहा है, 'यूरोप की किसी भी भाषा में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है।'

'दोहा' छंद अपनाकर बिहारी ने कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की सामासिकता अर्थात् मुक्तक काव्य की विशेषताओं को कुशलता से अपने काव्य का विषय बनाया है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार रस का अपूर्व ग्रंथ है। संयोग-वियोग के सभी पक्षों पर बिहारी की नजर है। संयोग के अन्तर्गत जहाँ आलम्बन के रूप, उसकी चेष्टाओं तथा हावों के सुंदर चित्र उकेरे गए हैं, वहीं वियोग के अन्तर्गत उसकी सभी स्थितियों का ऊहात्मक एवं संवेदनात्मक दोनों शैलियों में चित्रण हुआ है।

अर्थ-रमणीयता के साथ-साथ भाव-रमणीयता में बिहारी सिद्धहस्त हैं। 'गागर में सागर' व 'नावक के तीर' विशेषणों से युक्त उनके दोहे अर्थगाम्भीय व उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। बिहारी की रचना का कलापक्षीय सौन्दर्य अनुपम है। प्रस्तुत के साथ-साथ अप्रस्तुत विधान, ब्रजभाषा के परिनिष्ठत - परिष्कृत रूप, भाषा में व्यंजना, शब्दों के वैविध्य तथा मुहावरों - लोकोक्तियों के प्रयोग ने ब्रजभाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

12.9 शब्दावली

अनुप्रास - यह एक शब्दालंकार है। जब काव्य की किसी एक पंक्ति में एक ही वर्ण दो या दो से अधिक बार प्रयुक्त होता है तो उसे अनुप्रास कहते हैं।

उक्ति वैचित्र्य- जब किसी कथन में विचित्रता होती है, उसे उक्ति वैचित्र्य कहते हैं।

काव्य भाषा- कवि अपने भावों और विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह काव्यभाषा होती है।

दोहा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले व तीसरे चरण में 13-13 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-11 मात्राएं होती हैं।

सोरठा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके चार चरण होते हैं। इसके प्रथम व तीसरे चरण में 11-11 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-13 मात्राएं होती हैं।

अनुभाव - आश्रय की चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं। अनुभाव दो प्रकार का होता है- 1. सात्विक या अयत्नज अनुभाव, 2. कायिक या यत्नज अनुभाव।

श्रृंगार रस- श्रृंगार रस का स्थाई भाव रति है। विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ 'रति' नामक स्थाई भाव श्रृंगार रस को जन्म देता है। यह दो प्रकार का होता है- 1. संयोग श्रृंगार 2. वियोग श्रृंगार।

श्रृंगारिक - श्रृंगार से परिपूर्ण, अर्थात् कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि से पूर्ण।

सतसई - सात सौ दोहे के समूह को दर्शाने वाली रचना।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. जो कवि लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखते पर इन ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हैं वे रीतिसिद्ध कवि कहलाते हैं।

2. (क) बिहारी सतसई

(ख) रीतिसिद्ध

अभ्यास प्रश्न 2

(क) समाहार शक्ति, समास शक्ति (ख) श्रृंगारिकता

अभ्यास प्रश्न 3

1. श्रृंगार

2. (क) पूर्व राग (ख) मान (ग) प्रवास (घ) करुणा

अभ्यास प्रश्न 4

1. (ख)

2. (क) थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की क्षमता

   (ख) शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी ने वियोग श्रृंगार वर्णन में मानव मन की सूक्ष्म दशाओं का सजीव चित्रण किया है। विरहजन्य कामदशाओं के अन्तर्गत बिहारी ने मुख्यतः व्याधि, मरण, जड़ता का वर्णन अधिक किया है। नायिका के अतिशय विरह का चित्रण करने के लिए बिहारी ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है। बिहारी की नायिकाएँ वियोग में इतनी दुर्बल हो गई हैं कि उन्हें देखने के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु को चश्मा लगाना पड़ता है, वह साँस लेने पर सात हाथ आगे और साँस छोड़ने पर सात हाथ पीछे आती है। इस वियोग वर्णन पर फारसी परम्परा के विरह का प्रभाव दृष्टव्य है।

2. बिहारी ने नीतिपरक दोहों में जीवन में आने वाले सुख दुख को समान भाव से ग्रहण करने की बात कही है। साथ ही मानव की विभिन्न स्वभावगत विशेषताओं का वर्णन भी किया है। मनुष्य से स्वर्ण अथवा धन का लालच कभी न करने को कहा है क्योंकि उससे मनुष्य का नाश हो सकता है। वे कुसंगति से बचने को कहते हैं। बिहारी के ये विचार लोकानुभव पर आधारित हैं।

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नगेन्द्र, डॉ0; रीतिकाव्य की भूमिका; (1983); नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. सक्सेना, द्वारिका प्रसाद; (85-86); हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि; विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. शुक्ल, रामचन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।

4. गुप्त, गणपति चन्द्र;हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।

12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. रत्नाकर,जगन्नाथदास, बिहारी रत्नाकर साहित्यागार, जयपुर।
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद, बिहारी की वाग्विभूति, वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी।
4. त्रिपाठी, रामसागर, मुक्तक परंपरा और बिहारी, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
5. सिंह,बच्चन, बिहारी का नया मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिद्ध कीजिये की बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं तथा बिहारी सतसई की भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. 'एक सफल मुक्तकार के मुक्तक रचना करने में कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की समास शक्ति वांछनीय है।' इस आधार पर बिहारी के काव्य की समीक्षा कीजिये।

इकाई- 13 केशवदास : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व
13.3.1 केशव का महाकाव्यत्व
13.3.2 केशव का आचार्यत्व
13.4 केशव की काव्यगत विशेषताएं
13.4.1 भाव पक्ष
13.4.2. संरचना शिल्प
13.5 संदर्भ सहित व्याख्या
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम केशव के काव्य पर चर्चा करेंगे। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवि के अन्तर को समझ गए होंगे। आपने पढ़ा कि जिन कवियों ने अपनी रचनाओं में रस, छन्द, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण-उदाहरण लिखे, वे रीतिबद्ध कवि कहलाए। केशव भी रीतिबद्ध परम्परा के कवि हैं। केशव से पूर्व कई आचार्य कवियों ने हिन्दी में काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया परन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय केशवदास को है, जिससे वे रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य कहलाते हैं। केशव ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न विषयवस्तु से पूर्ण रचनाएं की हैं। आप देखेंगे कि दरबारी परिवेश और पांडित्य प्रदर्शन की आन्तरिक इच्छा होने से केशव की कविता में कथ्य की अपेक्षा शिल्प पक्ष अधिक प्रबल है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि केशव के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ-साथ केशव का परिचय, काव्य-वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी। इस इकाई को आद्योपरान्त पढ़ने के पश्चात् आप-

- रीतिकालीन साहित्य में केशव के काव्य का महत्व समझ पायेंगे।
- केशव प्रथम प्रवर्तक आचार्य क्यों है यह आप जान सकेंगे।
- केशव को कठिन काव्य का प्रेत क्यों कहा जाता है, जान पायेंगे।
- केशव के संवाद-सौष्ठव के महत्व को समझ पायेंगे।
- केशव के काव्य की कलापक्षीय एवं भावपक्षीय विशेषताएँ जान पायेंगे।

13.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व

केशव के जन्म के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। केशव की रचनाओं के आधार पर उनकी जन्मतिथि सं0 1612 मानी गई है। पं0 रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 रामकुमार वर्मा आदि उच्चकोटि के साहित्यकारों ने केशव का जन्म वि. सम्वत् 1612 ही माना है। केशव की रचना 'रसिक प्रिया' के आधार पर उनका जन्म ओरछा राज्य में बेतवा के तट पर ओरछा नगर में हुआ था। 'रामचन्द्रिका' के आधार पर उनका जन्म एक सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ तथा मामा का नाम कृष्णदत्त शुक्ल था। केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र गहरबार महाराज प्रताप रूद्र के आश्रित थे। उनके एक पुत्र काशीनाथ हुए जो प्रकाण्ड विद्वान थे। महाराजा प्रताप रुद्र के पुत्र मधुकर शाह उनका बड़ा आदर करते थे। काशीनाथ के तीन पुत्र- बलभद्र, केशवदास और कल्याण हुए। केशवदास मधुकर साह के पुत्र इंद्रजीत के आश्रित थे। इन्द्रजीतसिंह स्वयं एक अच्छे कवि थे और केशव का बहुत मान करते थे। केशवदास इन्द्रजीतसिंह के पश्चात् वीरसिंह देव राजा के आश्रय में भी रहे।

कृतित्व -

केशवदास ने निम्नांकित ग्रन्थों की रचनाएं की-

1. रसिक प्रिया, 2. नखशिख, 3. कविप्रिया, 4. रामचन्द्रिका, 5. वीरसिंह देव चरित, 6. रतन बावनी, 7. विज्ञान गीता, 8. जहांगीर-जस चंद्रिका, 9. बारहमासा, 10. छन्दमाला।

उपर्युक्त रचनाओं में से रसिकप्रिया, नखशिख, कविप्रिया, बारहमासा और छन्दमाला ग्रथों में काव्य शास्त्र अथवा लक्षण ग्रन्थों की चर्चा है। 'रामचन्द्रिका' भक्तिपरक कम पाण्डित्य

प्रदर्शन का काव्य अधिक है। 'विज्ञान-गीता' भक्तिपरक रचना है, वहीं 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी' और 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखे गये प्रशस्ति काव्य हैं। विषय वैविध्यपूर्ण इन रचनाओं को पढ़कर आप देखेंगे कि केशव ने तद्युगीन सभी काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है। केशव दास द्वारा अधिकांश ग्रन्थों में उसके रचनाकाल का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है।

13.3.1 केशव का महाकाव्यत्व

धार्मिक महापुरुषों के चरित्र को लेकर प्रबन्धकाव्य लिखने की परम्परा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्य से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। संस्कृत में बाल्मीकि कृत 'रामायण', अश्वघोष विरचित 'बुद्धचरित' और फिर प्राकृत-अपभ्रंश में रचित 'पउम चरिउ' (विमल सूरि) स्वयंभू कृत 'पउम चरिउ' आदि उल्लेखनीय हैं। जैन कवियों द्वारा रचित यही धार्मिक चरित परम्परा धीरे-धीरे हिन्दी तक पहुँची।

प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य दो शब्दों के योग से बना है। महत् का अर्थ है- उत्कृष्ट, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि महाकाव्य जीवन के महत् का विवेचन होता है। भारतीय आचार्यों में भामह पहले आचार्य हैं, जिन्होंने महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किया। केशवदास ने दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की- 1. वीरसिंह देव चरित और 2. रामचन्द्रिका। 'वीरसिंह देव चरित' एक स्तुति काव्य है, जिसमें केशव ने महाराज वीरसिंह के चरित्र पर प्रकाश डालने के बाद उनके दान, लोभ आदि से सम्बन्धित संवाद लिखे हैं। दूसरी रचना 'रामचन्द्रिका' है, जो संस्कृत साहित्य शास्त्र में वर्णित महाकाव्यात्मक लक्षणों की दृष्टि से लिखी गयी है। रामचन्द्रिका में 39 सर्ग हैं, जिन्हें 'प्रकाश' नाम दिया गया है। रामचन्द्रिका में केशव ने रामकथा को लेकर 'रामचन्द्रिका' की रचना की है जिससे इसकी गणना राम सम्बन्धी प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में होती है। इस काव्य के नायक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। जो अत्यन्त धैर्यवान और उदात्त हैं। इसके पूर्वार्द्ध में रामजन्म से रावणवध तक की और उत्तरार्द्ध में राम के वन से वापस आने से लेकर सीता वनवास और अश्वमेध यज्ञ तक की कथा का वर्णन है। इसकी कथा में महाकाव्य का विस्तार है। जिसमें जनक आदि अनेक राजाओं का वर्णन है। विभिन्न स्थलों का चित्रोपम वर्णन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' में श्रृंगार रस के साथ-साथ वीर एवं शान्त रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। विविध छन्दों के सुन्दर प्रयोग ने जहां काव्य को चारुता प्रदान की है वहीं चमत्कारपूर्ण एवं अलंकृत रचना शैली के माध्यम से काव्य को भव्यता प्राप्त हुई है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर 'रामचन्द्रिका' की गणना महाकाव्यों में होती है। कुछ विद्वान इसे महाकाव्य नहीं मानते। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- 'संबंध निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है। उस कथा के अन्दर जो मार्मिक स्थल हैं उनकी ओर केशव का ध्यान बहुत कम गया है। दृश्यों की स्थानगत विशेषता केशव की रचनाओं में ढूंढ़ना व्यर्थ है।' (हि.सा.का. इतिहास, पृ. 142)।

यह सही है कि केशव की रामचन्द्रिका में 'बाल्मिकि रामायण' और 'रामचरितमानस' जैसी श्रेष्ठ रचनाओं की तरह का कथा-प्रवाह नहीं है। इसमें गणेश और सरस्वती की वन्दना से काव्य का आरम्भ कर राम की वन्दना की गई है। राम के बाल्यावस्था के वर्णन को छोड़कर राम के विश्वामित्र के साथ वन गमन, ताड़कावध, धनुष यज्ञ, राम विवाह तक तथा राम के वन-गमन से लेकर रावण वध-सीता मिलन तत्पश्चात् अयोध्या आगमन के पश्चात् राम-भरत मिलाप, राजतिलक, राम-राज्य वर्णन, सीता-वनवास पुन: राम-सीता मिलन तक का वर्णन राम-कथा से ही सम्बद्ध है। जहां तक मार्मिक प्रसंगों की ओर केशव की दृष्टि नहीं जाने का आरोप है, यह जरुर है कि 'रामचरित मानस' में जिन मार्मिक स्थलों का वर्णन तुलसी ने किया है, उनका वर्णन केशव ने नहीं किया। दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं की नगण्यता के संबंध में कहा जा सकता है कि केशव ने रामचंद्रिका में वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, सरोवर आदि के वर्णन में प्रकृति का कहीं आलम्बन तो कहीं उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। प्रात:कालीन सूर्य की आभा हो या चन्द्रमा की शोभा दोनों का सुंदर वर्णन रामचंद्रिका में मिलता है। इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं इस वर्णन में पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण चमत्कारप्रियता के दर्शन भी होते हैं।

केशव के संबंध में डा. विजयपाल सिंह लिखते हैं, "केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तनभूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है।" (केशव और उनका साहित्य, पृ. 119)। रामचंद्रिका में लोक पक्ष समन्वित भक्ति-भावना के साथ-साथ लोककल्याण विषयक भावना के दर्शन भी होते हैं। रामचरितमानस का सा जीवन वैविध्य भले ही केशव की रचना में न हो किन्तु केशव जीवन की अन्त:-बाह्य स्थितियों से सर्वथा परिचित थे। रसवत्ता व भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी वीर, श्रृंगार व शान्त रस का सुंदर चित्रण रामचंद्रिका में दिखाई देता है। इस प्रकार रामचंद्रिका केशव की एक महाकाव्यात्मक रचना है।

13.3.2. केशव का आचार्यत्व

इससे पूर्व की इकाई में आपने पढ़ा होगा कि संस्कृत में लक्षण ग्रन्थ लिखे गये अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जिनमें रस, अलंकार, नायिका भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे ग्रन्थों को साहित्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र नाम से जाना जाता है। यही परंपरा हिन्दी में रीतिकाव्य धारा कहलाई। हिन्दी की इस काव्य धारा और संस्कृत के साहित्यशास्त्र का मूल अंतर यही है कि इनके प्रणेताओं ने लक्षण और उदाहरणों को स्वयं लिखा जबकि संस्कृत में काव्यशास्त्र के रचनाकारों ने लक्षण स्वयं लिखे और उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से दिए। केशव से पूर्व हिन्दी में आचार्य-कवि सम्बन्धी रीतिकाव्य धारा में प्रथम कवि 'पुष्य' को माना जाता है, किन्तु इनका अलंकार ग्रन्थ अप्राप्य है। इस धारा में पहला प्राप्त ग्रन्थ कृपाराम रचित 'हिततरंगिणी' है। जिसमें काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी पद्धति पर लिखे गये गोप कवि के 'राम भूषण', मोहन लाल की 'रामचन्द्रिका' आदि ग्रन्थ अप्राप्य हैं। अन्य कई कवियों ने रीतिग्रन्थ लिखे किन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा

परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का श्रेय सर्वप्रथम केशवदास को ही प्राप्त है। इस आधार पर केशव को हिन्दी में रीतिकाव्य के प्रथम प्रतिनिधि आचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

केशव को आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले उनके दो ग्रन्थ निम्नांकित हैं- 1. रसिक प्रिया 2. कविप्रिया। 'रसिक प्रिया' की रचना काव्य प्रेमियों को दृष्टि में रखकर हुई है। इसमें मुख्यत: श्रृंगार और उसके विभिन्न अंगों के अतिरिक्त काव्य-दोषों का वर्णन है, अन्य रसों का वर्णन संक्षिप्त है। 'रसिकप्रिया' की रचना का आधार संस्कृत के विविध ग्रन्थ हैं। इसमें नायिका-भेद का वर्णन मुख्यत: संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों के आधार पर ही है। परन्तु यत्र-तत्र कवि की मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ- जाति के आधार पर नायिकाओं का विभाजन तथा नायक-नायिका के मिलन स्थलों या अवसरों पर नवीन प्रसंगों की योजना। 'कविप्रिया' रचना का उद्देश्य पाठकों को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना है। इसमें सोलह प्रभाव हैं। जिनमें कवि शिक्षा, काव्य दोष और अलंकार निरूपण पर विशेष ध्यान दिया गया है। अलंकार निरूपण के अन्तर्गत उनका वर्गीकरण और लक्षण-निरूपण हुआ है। 'छन्दमाला' नामक ग्रन्थ में कवि ने विभिन्न मात्रिक व वर्णिक छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। केशव के आचार्यत्व पर प्रो. वासुदेव सिंह कहते हैं, "जहां तक उनके आचार्य पक्ष का सम्बन्ध है, उसमें एक शिक्षक और रीति निरूपक के गुण विद्यमान हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से वह अलंकारवादी थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वह सर्वांग निरूपक आचार्य हैं।" (हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ 216)।

केशव ने विभिन्न काव्यांगों का निरूपण करते हुए भाषा का कार्य, कवि योग्यता, कविता का स्वरूप, कविता का उद्देश्य, कवियों के भेद, काव्य रचना के ढंग, काव्य विषय, काव्य दोष, अलंकार, रस, छंद, विविध वृत्तियों आदि पर सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लिखा है। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने केशव को ही रीतिकाव्य धारा का संस्थापक कवि माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केशव के स्थान पर चिन्तामणि को प्रथम सर्वांग निरूपक आचार्य मानते हैं। उनका मानना है कि रीति-ग्रन्थों की अविछिन्न परम्परा 'कविप्रिया' के लगभग पचास वर्ष बाद चली और इस परम्परा के कवियों ने केशव को अपना आदर्श भी नहीं माना। कुछ भी हो शास्त्रीय परिपाटी को जन्म देने तथा अन्य कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने वाले केशव आचार्य रूप में ही हिन्दी जगत में सम्मानित हैं। वस्तुत: केशव ही रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

सही विकल्प का चुनाव कीजिए -

1. केशव दास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' है-
   अ. खण्डकाव्य
   ब. महाकाव्य

स. मुक्तक काव्य

2. रामचन्द्रिका में .....सर्ग हैं, जिन्हें.....नाम दिया गया है।

3. 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह जान पड़ती है। किसने कहा-

अ. डॉ. श्यामसुन्दर दास ने
ब. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने
स. डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने
द. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रन्थ किसे कहते हैं? (उत्तर निम्नांकित तीन पंक्तियों में दीजिये)।

.....

.....

.....

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी रीति ग्रन्थों में सर्वांग निरूपक प्रथम आचार्य किसे मानते हैं-

अ. केशव दास को
ब. चिन्तामणि को
स. कृपाराम को
द. पुष्य को

3. 'कविप्रिया' अलंकार निरूपक ग्रन्थ है या रस विवेचक?

13.4 केशव की काव्यगत विशेषताएँ

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम केशव की काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि काव्य के दो पक्ष होते हैं। 1. **भाव पक्ष**, जिसे कथ्य या विषय वस्तु भी कहा जाता है। (अर्थात् कवि जो कहता है, वह भाव पक्ष है) 2. **कला पक्ष**, जिसे संरचना शिल्प या शैली भी कहा जाता है। (अर्थात् जिस ढंग से कहा जाता है या कहने का तरीका)। चलिए केशव की कविता के इन दोनों पक्षों पर विचार करते हैं।

13.4.1 भाव पक्ष

भावाभिव्यंजना हेतु कवि का सहृदय होना आवश्यक है। तभी वह सरस काव्य का सफल रचनाकार हो सकता है। केशव रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। जिस परम्परा में वे पले-बढ़े वह पूरी तरह रीतिकालीन श्रृंगारिकता से परिपूर्ण थी। केशव को

पांडित्य और आचार्यत्व को प्रदर्शित व प्रमाणित करने में भी विशेष रुचि थी। अलंकार उन्हें अत्यधिक प्रिय थे। केशव के 'रसिक प्रिया' में रस विवेचन व 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थों में अलंकारों का विशद वर्णन है, इन्हें अलंकारवादी कवि भी कहा जाता है। 'भूषन बिनु न बिराजहिं कविता बनिता मित्त" कहने वाले केशव अपने अधिकांश वर्णनों में अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार की सृष्टि करना चाहते हैं, जिससे उनके काव्य में अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गये। जिससे काव्य का क्लिष्ट हो जाना स्वाभाविक है। इससे केशव पर कठिन काव्य का प्रेत या हृदयहीनता के आक्षेप लगते हैं किन्तु उनके काव्य का आद्योपान्त अध्ययन करने पर अनेक स्थलों पर उनकी सरसता व सहृदयता का परिचय मिलता है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने श्रृंगार के विविध चित्र उपस्थित किये हैं। साथ ही अन्य कारुणिक प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। श्रृंगारपरक अनुभावों का कवि ने सहज स्वाभाविक और उत्कृष्ट वर्णन किया है। श्रीराम व सीता के संयोग के विभिन्न अवसरों पर केशव की सहृदयता दृष्टव्य है-

संयोग पक्ष

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खेंचो हाथ।

इसी प्रकार वियोग पक्ष-

फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिनु।
दूरि करि माला ब्याल सी लगती है।।

केशव कृत भक्ति वर्णन में भी सहृदयता देखने को मिलती है। गणेश स्तुति का एक वर्णन दृष्टव्य है-

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल ।
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को ।।

वीर गाथात्मक काव्य के अन्तर्गत केशव की तीन रचनाएं मिलती हैं। रतनबावनी, वीरसिंह देवचरित, जहांगीर-जस-चन्द्रिका। '**रतन बावनी**' बावन छंदों की लघु रचना है। इसमें इन्द्रजीत सिंह के बड़े भाई रतन सिंह के शौर्य का वर्णन किया गया है। वे अकबर की ओर से बंगाल के विद्रोहियों का दमन करने गये थे, वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। कवि ने उनके पराक्रम का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया है। **वीर सिंह देव चरित** में केशव ने वीरसिंह बुन्दोला का जीवन चरित लिखा है। उनके शौर्य-पराक्रम और राज्य प्राप्ति का वर्णन विशेष रूप से किया है। *संवाद सौष्ठव* केशव के काव्य का प्राण है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत केशव संवादों के लिए प्रसिद्ध हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जहाँ उनके आचार्यत्व और कवित्व पर आक्षेप किए है। वहीं रामचंन्द्रिका में संवादों की सुन्दर योजना पर मुक्तकंठ से केशव की प्रशंसा भी की है-

'रामचंन्द्रिका में केशव को सबसे अधिक सफलता मिली है संवादों में।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास) किसी भी काव्य में संवादों की योजना के निम्नांकित तीन महत उद्देश्य होते हैं-

1. कथानक को आगे बढ़ाने के लिए।
2. चरित्र-चित्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए।
3. काव्य में रोचकता उत्पन्न करने के लिए।

केशव के काव्य संवादों द्वारा ये सभी उद्देश्य पूर्ण होते हैं। कहना न होगा कि जहाँ संवादों ने उनके काव्य को गति प्रदान की है, वहीं चरित्र-चित्रण हेतु अभिनयात्मक प्रणाली में संवाद ही मुख्य भूमिका निभाते हैं, जो केशव के काव्य के संवादों ने निभाई है और काव्य को पढ़ते-पढ़ते ऊब जाने की स्थिति से बचने के लिए संवादों ने रोचकता उत्पन्न कर रामचन्द्रिका को सरस बनाया है।

'रामचंद्रिका' में नौ संवाद मिलते हैं- सुमति-विमति संवाद, राम-जानकी संवाद, राम-लक्ष्मण संवाद, सीता-हनुमान संवाद, राम-परशुराम संवाद, राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर संवाद। इनमें राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद और सीता-हनुमान संवाद छोटे होते हुए भी प्रभावशाली और सुन्दर हैं किन्तु रावण-बाणासुर संवाद, राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद अपेक्षाकृत बड़े होते हुए भी कम रोचक नहीं हैं। इन संवादों की विशेषताओं को आप निम्नांकित रूप में देख सकते हैं- इन संवादों में **पात्रानुकूलता** देखने को मिलती है। रावण और बाणासुर दोनों ही अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हैं, दोनों को स्वयं पर गर्व है, दोनों एक-दूसरे से अपने पराक्रम का वर्णन करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेते हैं। रंगशाला में रखे हुए धनुष को तोड़ने के लिये प्रवेश करते ही रावण कहता है-

शंभु कोदण्ड दै राजपुत्री कितै।
टूक द्वै तीन कै, जाहुँ लंकाहि लै ।।

उपर्युक्त संवाद रावण की शक्ति और उसको अपनी शक्ति पर होने वाले अहंकार को दर्शा रहा है। इसके प्रत्युत्तर में बाणासुर का व्यंग्य देखिये-

जुपै जिय जोर, तजौ सब सोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख-कोरि ।।

तब रावण अपने शौर्य, पराक्रम की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हुए कहता है-

केशव कोदण्ड विषदंड ऐसो खंडै अब।
तेरे भुजदंड की बड़ी है विडम्बना ।।

वाणासुर चुटकी लेता है-

बहुत बदन जाके, विविध वचन ताके ।।

उपर्युक्त संवाद अत्यन्त पराक्रमी योद्धाओं रावण और बाणासुर के सर्वथा अनुकूल हैं। पात्रानुकूलता अन्य सभी संवादों में दर्शनीय है। केशव के संवादों में **शिष्टाचार** दर्शनीय है, इनमें सामाजिक मर्यादा का पूर्णत: ध्यान रखा गया है, सभी पात्रों के संवाद शिष्टाचारपूर्ण हैं। 'हनुमान-सीता' संवाद को ही लें तो उसमें हनुमान ने सीता के लिये 'जननि', राम के लिए 'दशरथ-नन्दन' या रघुनाथ, दशरथ के लिए अज-तनय-चन्द आदि शब्दों का प्रयोग कर संवादों की गरिमा को बनाए रखा है। केशव के संवाद **कूटनीति** से पूर्ण है, उनमें राजनीति में प्रयोग होने वाले सभी उपायों को भी सम्मिलित किया गया है। कूटनीति, भेद नीति आदि का सहारा लेकर केशव ने संवादों को जीवन्त व प्रभावशाली बना दिया है, रामचन्द्रिका का अंगद-रावण संवाद इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इस प्रकार ये सभी संवाद राजनीति के सभी दांवपेचों से युक्त हैं।

केशव के संवाद **नाटकीय** सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। पात्रों द्वारा बोले गए संवादों के आगे उनका नाम उल्लिखित है, जिससे काव्य में नाटकीयता आ जाने से रोचकता बढ़ गई है, जैसे-

रावण- कौन हो पठये सो, कौने, हयाँ तुम्हें कहा काम है ?
अंगद- जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है ।

केशव के संवादों में सामान्यत: **बोलचाल की भाषा** का ही प्रयोग हुआ है। जिससे स्वाभाविकता और सरलता में वृद्धि हुई है। मुहावरे और लोकोक्तियों के साथ-साथ व्यंग्यात्मकता भी इन संवादों की विशिष्टता है। छोटे-छोटे वाक्य गंभीर अर्थ से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि रामचंद्रिका के संवादों में संक्षिप्तता, सरलता, काव्य में नाटकीय सौन्दर्य, भाषा की व्यावहारिकता, पात्रानुकूलता, शिष्टता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो पल-पल कौतूहल को बढ़ाती हैं, रामचन्द्रिका का संवाद सौष्ठव निश्चय ही अप्रतिम है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. कथ्य किसे कहते हैं ? निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

   .....

   .....

2. केशव की दो वीरगाथात्मक रचनाओं के नाम लिखिए।
3. केशव के संवादों की तीन विशेषताएं लिखिए।

केशव का प्राकृतिक चित्रण

केशवदास काव्य और प्रकृति के बीच अटूट संबंध मानते हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति वर्णन हेतु अतिरिक्त अवसर जुटाने के प्रयास भी किए हैं। प्रकृति वर्णन हेतु केशव ने

परम्परागत सभी विधियों को अपनाया है, जिसमें प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में प्रकृति का आलंबन, आलंकारिक, बिम्ब-प्रतिबिम्ब और परिगणनात्मक रूप में भी वर्णन मिलता है।

सीता से वियुक्त होने के पश्चात् राम की विरहावस्था का वर्णन करते हुए केशव ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है, जो द्रष्टव्य है-

हिमांसु सूर सो लगै सो बात वज्र-सी बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों, बिलेप अंग को दहै॥
विसेस कालराति सों, करालराति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिए।

विरही राम को इस समय शीतल चन्द्रमा सूर्य के समान दाहक, मलय वायु वज्र के समान कठोर लगती है, सारी दिशाएँ जलाने लगती हैं, चंदन आदि उबटन भी शरीर को जला रहे हैं। साधारण रात्रि कालरात्रि के समान प्रतीत हो रही है। प्रकृति के ये सभी उपादान विरही राम के दुख को और बढ़ा रहे हैं।

केशव ने प्रकृति को **आलम्बन** रूप में भी चित्रित किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति को निम्नांकित दो रूपों में चित्रित किया जाता है— प्रकृति के विविध पदार्थों के नामों की गणना करके, इसे नाम परिगणन प्रणाली कहा जाता है। दूसरा, प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों का अंकन करके बिम्ब प्रस्तुत करना, इसे 'बिम्ब ग्रहण प्रणाली' कहा जाता है। केशव ने नाम परिगणन प्रणाली का प्रयोग अधिक किया है। जैसे-

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेरवर॥

केशव कहीं-कहीं बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करते हुए भी दिखते हैं, जो केशव की प्रकृति का शाब्दिक चित्र खींचने की क्षमता दर्शाता है किन्तु यत्र-तत्र चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से प्रकृति वर्णन थोड़ा दबा-दबा सा प्रतीत होता है। केशव ने प्रकृति के **मानवीकृत** रूप में सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी प्रकृति मानवीय क्रिया-व्यापारों में लिप्त-सी दिखाई देती है। यही कारण है कि कहीं केशव को अयोध्या के भवनों पर सुशोभित पताकाएँ दण्डधारण करने वाली संन्यासिनी के समान जान पड़ती हैं, कहीं वर्षा ऋतु अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के समान कार्य करती हुई जान पड़ती है तो कभी महाकाली के समान किलकारी भरती-सी दृष्टिगत होती है। केशव के काव्य में वर्षा ऋतु के मानवीकरण का सुन्दर रूप दृष्टव्य है —

तरूनी यह अत्रि रिषीस्वर की-सी ,
उर में हिम चन्द्रप्रभा सम दीसी।
वरषा न सुनो किलकै किल काली ,

सब जानत हैं महिमा अहिमाली।

इस प्रकार आप देखेंगे कि केशव के काव्य में यत्र-तत्र प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण किया गया है। इस प्रकार केशव की रचनाओं में प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। कहीं वह समाज के लिए एक उपदेशक के रूप में कार्य करती चित्रित है तो मानवीय सुख-दुख की स्थितियों में **संवेदनात्मक** हो जाती है अर्थात् मनुष्य के सुख-दुखानुसार स्वयं भी परिवर्तित हो जाती है। केशव के प्रकृति चित्रण पर पं. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि कई विद्वानों ने आक्षेप किए हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास का कहना है कि "प्रकृति के सन्तुलित सौन्दर्य से प्रभावित होने के लिए जिस भावुकता की आवश्यकता होती है, उसका केशव में सर्वथा अभाव है।" (हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 255)।

केशव अपनी अलंकार-प्रियता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के वशीभूत प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं वे शब्दों से खेल करते से जान पड़ते हैं। प्रात:काल राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के जनकपुरी पहुँचने पर सूर्य के लाल गोले को समय रूपी कापालिक के हाथ लगा रक्त रंजित कपाल बताना, अत्यन्त घृणास्पद प्रतीत होता है —

कै शोणित कलित कपाल यह किलकापालिक काल को,
यह ललित लाल कैसो लसत् दिग् भामिनि के भाल को।

इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर विश्वामित्र द्वारा सूर्य का वर्णन करते हुए 'चढ़्यो गगन तरुधाम, दिनकर बानर अरुण मुख' कहकर उसे बंदर रूप में चित्रित करना आदि अनेक ऐसे वर्णन हैं जहाँ केशव अलंकारों के जाल में फँसे हास्यास्पद नजर आने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. मानवीकरण किसे कहते हैं। निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

2. व्यंग्यार्थ क्या है ?

13.4.2 संरचना शिल्प

केशव के काव्य की भाषा **ब्रज** है, जिसमें बुंदेलखंडी भाषा का प्रभाव भी विद्यमान है, इसलिए अधिकांश विद्वानों ने उनकी भाषा को बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा कहा है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। केशव ने अपनी कविता का माध्यम जनभाषा को बनाया, जिसके लिए स्वयं उन्होंने लिखा है-

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास।।

केशव की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त अवधी, अरबी-फारसी के शब्द भी उनकी कविताओं में यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। केशव की भाषा में अभिधा की प्रधानता होते हुए भी चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग कवि ने खूब किया है और कहीं-कहीं ब्रजभाषा को ही संस्कृतमय बना दिया गया है, जैसे-

शिरचन्द्र की चन्द्रिका छारु हाशे।
महापात की ध्वांत धाम प्रणाशे।।

सृजति, शस्ययुक्ता, समुद्रावधि, स्वलीलया, पतन्ति, चलन्ति आदि कई संस्कृत शब्दों का प्रयोग केशव के काव्य में हुआ है। केशव की भाषा में **बुंदेलखंडी** शब्दों का आधिक्य मिलता है, जैसे- गलसुई, स्यों, छन्दी, मानिबी, जानिबी, चोली, ओली, कीबी, छीवै आदि। **अवधी** शब्दों के अन्तर्गत इहाँ, उहाँ, दिखाउ, दीन, कीन आदि शब्द द्रष्टव्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। दरबारों में **अरबी-फारसी** भाषाओं का बोलबाला था, अत: इन भाषाओं की शब्दावली का पूरा-पूरा प्रयोग केशव ने किया है। केशव के काव्य में बकसीस, सिरताज, सतरंज, बाजी, कसम, शोर, तेग, फरमान, दरबार, महल, गरीब आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। **शैली** की दृष्टि से केशव ने दो प्रकार की शैली अपनाई है - 1. प्रबंध शैली 2. मुक्तक शैली। केशव ने रामचंद्रिका, रतनबावनी, वीरसिंहदेव चरित में प्रबंध शैली अपनाई है तो कविप्रिया, रसिकप्रिया और नख-शिख में मुक्तक शैली को अपनाया है। केशव की शैली में **ओज, माधुर्य** और **प्रसाद** तीनों गुण विद्यमान हैं। इसी गुण के कारण उनके काव्य के विभिन्न वीर-रसात्मक स्थल एवं वाद-विवाद सम्बन्धी प्रसंग सरस और मार्मिक बन पड़े हैं। 'रामचन्द्रिका' में राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर आदि संवाद दपोक्तियों से भरे हैं। बाणासुर की उक्ति को आप उदाहरणार्थ देख सकते हैं –

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी।
देखि फिरौं तब ही तब रावण सातों रसातल के जे विलासी।।
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छिति मंडल छत्र प्रभासी।
जानै को केशव केतिक बार में सेस के सीसन दीन्ह उसासी।।

केशव की **रसिकप्रिया** में **माधुर्य गुण** की प्रधानता देखने को मिलती है। उनके श्रृंगार-पूरित छंदों में माधुर्य गुण का प्रवाह देखिए-

एक रदन गज वदन सदन बुद्धि मदन-करन-सुत।
गौरि-नंद, आनंद-कंद जगवंद चंद-युत।।
सुखदायक दायक सुकीर्ति जगनायक नायक।

खलघायक घायक दरिद्र सब लायक लायक ।।

केशव के काव्य में अलंकाराधिक्य के कारण सामान्यत: क्लिष्टता नजर आती है, किन्तु ऐसे पद भी है जो प्रसाद गुण से सम्पन्न हैं-

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई ।
ईश मनो वसुधा में सुधारि, सुधाधर मंगल मंडि जोन्हाई ।।

केशव का शब्द भंडार अनंत था। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित तो थे ही, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, अरबी-फारसी शब्दों का भी विशाल भंडार उनके पास विद्यमान था।

केशव के काव्य में **विविध छंदों** का प्रयोग देखने को मिलता है। केशव ने 'रामचंद्रिका' के प्रारंभ में ही छन्दों के संबंध में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है-

रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहुछन्द ।

केशव ने रामचंद्रिका में 24 मात्रिक व 56 वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है। अपने काव्य में भावानुसार छंदों का प्रयोग करने में केशव कुशल हैं। यशोगान में जहाँ उन्होंने कवित्त व सवैया छंद का प्रयोग किया है, वहीं वीर रस परिपूर्ण भाव के लिए छप्पय छंद का प्रयोग किया है। कतिपय विद्वानों ने छंदों के प्रयोगाधिक्य के लिए केशव की रचनाओं पर आक्षेप भी लगाए हैं। पद-पद पर छंदों के परिवर्तन से रचना का प्रबंधत्व बाधित हुआ है, ऐसा केशव की रचना के विषय में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त मानते हैं।

केशव ने अपने काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण और शांत रसों का प्रयोग अधिक किया है। केशव रसिक प्रवृत्ति के थे, अत: उन्हें श्रृंगार रस ने ज्यादा आकृष्ट किया है। कृष्ण प्रेम में लीन राधा का चित्रण द्रष्टव्य है —

केशव चौंकति-सी चितवै, छतिया धरकै तरकै तकि छाँही ।

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध और लव-कुश युद्ध में वीर रस का उत्कृष्ट चित्रण देखा जा सकता है —

राघव को दल मत करीश्वर अंकुश दै कुश केसव फेर~यौ।

'रामचन्द्रिका' में वीर रस पूर्ण ऐसे अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। करूणापूरित प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। लव की मूर्च्छा का समाचार सुनकर सीता की व्याकुल स्थिति का चित्रण द्रष्टव्य है —

सीता गति पुत्र की सुनि कै भई अचेत । मनो चित्र की पुत्तिका, मन क्रम वचन समेत ।।

इस प्रकार केशव ने अनेकानेक रसों के सुन्दर दृश्यों को अपने काव्य में वर्णित किया है।

केशव के काव्य में अलंकारों का प्रयोगाधिक्य देखने को मिलता है। उनका मानना था कि 'भूषन बिनु न बिराजति, कविता बनिता मित्त' अर्थात् आभूषणों के अभाव में कविता और स्त्री शोभायमान नहीं होती। उनके काव्य में अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है। श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि ऐसे अलंकारों का प्रयोग भी केशव ने किया है, जिनके कारण केशव का काव्य सर्वसाधारण के लिए कठिन और दुरूह हो गया है। ऐसे स्थलों पर केशव की हृदयहीनता ही दिखाई देती है। केशव के वर्षा-वर्णन में प्रयुक्त—

भौहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।

आदि कवित्त जिनमें दो-दो अर्थ निकलते हैं। जिन्हें समझने में सामान्यत: सभी को कठिनाई महसूस होती है, उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। संस्कृत शब्दों के प्रयोगाधिक्य के कारण जहाँ केशव के काव्य में दुरूहता आयी वहीं हिन्दी भाषा की समृद्धि एवं शब्द भण्डार की पूर्ति में योगदान भी रहा। हिन्दी भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति आयी और हिन्दी को गौरव प्राप्त हुआ। नि:सन्देह केशव की भाषा शास्त्रीयता से परिपूर्ण और अभिव्यंजना-शक्ति सम्पन्न है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. केशव की रचना में प्रयुक्त हुए अरबी-फारसी शब्दों से पाँच शब्द नीचे लिखिये -

कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द लेकर रिक्त स्थान भरिए -

2. शैली की दृष्टि से केशव ने 'रामचन्द्रिका' में..... व 'रसिकप्रिया' में ..... को अपनाया है। (मुक्तक शैली, प्रबन्ध शैली)

13.5 संदर्भ सहित व्याख्या

इससे पूर्व आपने केशव के काव्य की भावपक्षीय एवं कलापक्षीय विशेषताओं को जाना। अब हम केशव की 'रामचन्द्रिका' से कुछ पद्य खंडों की व्याख्या करेंगे।

बालक मृणालिनी ज्यों तोरि डारै सबै काल, कठिन कराल ज्यों अकाल दीह दुख कों।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम, पंख ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष कों।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम्, राखत है 'केसौदास' दास के वपुष कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै, दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख कों।।

शब्दार्थ: बालक= यहाँ हाथी के बच्चे से अभिप्राय है। मृणालिनी = कमल नाल = कमल की डंडी जो बहुत कोमल होती है। दीह = दीर्घ, बड़ा। कलुष = पाप। वपुष = शरीर।

सांकरे = संकट में पड़ा हुआ। सांकरनि = श्रृंखलाओं, बन्धनों को। दसमुख = दसों दिशाएं (दसों दिशाओं के लोग) तथा ब्रह्मा- चार मुख, विष्णु- एक मुख, महादेव = पाँच मुख (ब्रह्मा+विष्णु+महादेव=दसमुख)। गजमुख = गणेश।

प्रसंग : केशव दास जी 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ करते हुए विपत्तियों को नष्ट करने वाले गणेश जी की वन्दना कर रहे हैं। गणेश 'गजवदन' हैं, इसलिए उनके सभी कार्यों को कवि ने हाथी के बच्चे के कार्यों के समान दिखाने की चेष्टा की है। दसों दिशाओं के मनुष्य उनके कृपाकांक्षी रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि इसी तथ्य को प्रकट कर रहा है।

व्याख्या : जैसे हाथी का बच्चा सभी कालों में कमल- नाल को तोड़ डालता है, वैसे ही गणेशजी बड़े-बड़े भयंकर व कठिन दुखों को नष्ट कर देते हैं। विपत्तियों को इस प्रकार दूर कर देते हैं, जिस प्रकार हाथी का बच्चा कमलिनी के पत्ते को सरलता से तोड़ देता है तथा पाप (कलुष) को कीचड़ की तरह दबाकर पाताल में भेज देते हैं। आप दास के शरीर से कलंक का चिन्ह दूर करके उसे शिव के मस्तक के चन्द्रमा के समान (कलंक-रहित) बना देते हैं तथा उसकी (सदा) रक्षा करते हैं। आप सामने आते ही संकट में पड़े भक्त के बन्धनों को तोड़ डालते हैं। दसों दिशाओं के लोग अथवा दस-मुख (त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-ब्रह्मा के चार मुख, विष्णु का एक मुख, शिव के पांच मुख= दस मुख) श्रीगणेश जी का मुख देखते रहते हैं अर्थात् गणेश जी से सहायता की आशा करते रहते हैं।

विशेष : 1. अलंकार : 'बालक मृणलिनी..... दुख को' में उदाहरण, 'कठिन कराल' में 'क' की अनेक बार आवृत्ति, 'दीह दुख' में 'द' की अनेक बार आवृत्ति, 'हरत-हठि' में 'ह' की कई बार आवृत्ति, 'पाताल..... पठवे' में 'प' की एक से अधिक बार आवृत्ति तथा 'सांकरे' .....सन्मुख में 'स' की बहु बार आवृत्ति में वृत्यानुप्रास, 'पद्मिनी के पात सम' तथा 'भव-दीस ससि सम' में उपमा, 'कराल-अकाल', कलंक-अंक में ध्वनिसाम्य और 'गजमुख-मुख' में यमक तथा 'गजमुख' का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार है।

कविकुलविद्याधर सकल कलाधर, राजराज वर वेष बने।
गनपति सुखदायक, पसुपतिलायक, सूर सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन, मंगल गरुगन, धर्मराज मन बुद्धि धनी।
बहु, सुभ मनसाकर, करुनामय अरु, सुरतरंगिनी सोभसनी॥

शब्दार्थ : कवि कुल= शुक्राचार्य, कवि। विद्याधर= देवताओं की एक जाति, विद्या को धारण करने वाले, विद्वान। कलाधर= कलाकार, चन्द्रमा। राजराज= कुबेर, राजाओं के राजा। बर= उत्तम। गनपति= गणों के स्वामी, गणेश। पसुपति= शिवजी पशुओं के स्वामी। सूर= शूरवीर। सेनापति= कार्तिकेय, सेना के अध्यक्ष। बुध= विद्वान, बुध नामक ग्रह। गुरु= उपाध्यक्ष तथा गुरु अर्थात् बृहस्पति ग्रह। धर्मराज= परम धर्मात्मा, सुरतरंगनी= देव नदी, सरयू।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद में महर्षि विश्वामित्र अयोध्या के नागरिकों का वर्णन करते हुए कहते हैं-

व्याख्या: अयोध्या नगरी देव-सभा से भी बढ़कर है, क्योंकि देव- सभा में तो एक ही कवि (शुक्राचार्य) हैं जबकि यहाँ पर कवियों का समूह है। देव-सभा में विद्याधर नाम की एक देव जाति के लोग हैं, किन्तु यहाँ पर सभी लोग विद्या को धारण करने वाले अर्थात् विद्वान हैं। देव-सभा में कलाधर (चन्द्रमा) एक ही है, किन्तु यहाँ पर सभी कलाकार हैं। देव-सभा में उत्तम वेश धारण करने वाले अनेक व्यक्ति हैं। देव-सभा में देवों को सुख देने वाले केवल एक (गणपति गणेश) हैं, जबकि यहाँ पर पशुओं के स्वामी अनेक हैं। राज-काज में सहायता देने वाले ये शूरवीर इतने हैं कि गिने भी नहीं जा सकते। देव-सभा में सेनापति कार्तिकेय एक ही हैं जबकि यहाँ पर अनेक सेनापति हैं। देव-सभा में एक बुधजन एवं गुरु है, जबकि यहाँ मंगलकारक गुरुओं का समूह है। देव-सभा में अच्छा मन और अच्छी बुद्धि रखने वाले एक ही धर्मराज (यमराज) हैं, जबकि यहाँ पर अनेक धर्मात्मा हैं। देवलोक में एक ही कल्पवृक्ष है जबकि यहाँ पर बहुत से मनोवांछित फल देने वाले वृक्ष हैं। वहाँ एक ही दयापूर्ण विष्णु तथा एक ही सुर-तरंगिनी (देव नदी, आकाश गंगा) है जबकि यहाँ बहुत-से लोग दयापूर्ण हैं और यहाँ परम पावन सरयू नदी है।

विशेष: 1. अलंकार : 'कवि-कुल, कल-कला', राज-राज, वर-वेष बने, पसु-पति, सूर-सहायक, गुरु-गन, सोम-समी में अनुप्रास। लगभग सभी शब्दों में श्लेष तथा मुद्रा अलंकार है, क्योंकि उनका एक अर्थनाम है। दायक-लायक-सहायक, जन-गन-मन में ध्वनिसाम्य है। 2. इस पद में कवि का अलंकार चमत्कार तथा शब्दों का गठन विशेष उल्लेखनीय है। 3. अनेक स्थानों पर मुद्रा अलंकार का प्रयोग है। शब्द शक्ति का वर्णन चमत्कारपूर्ण है। अर्थ सहज बोधगम्य नहीं है। ऐसी ही छन्द-रचना के कारण केशव 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे गये हैं। 4. इस छन्द में प्राय: सभी पद श्लिष्ट हैं। श्लेष अलंकार के चमत्कार के कारण यद्यपि कठिनाई आ गई है, किन्तु देव-सभा की अपेक्षा अयोध्या की जो विशेषता दिखाना कवि को इष्ट है, वह पूरा हो गया है।

पावक, पवन, मनि पन्नग, पतंग, पितृ, जेते ज्योतिवत जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, तीरथ सहित सिंधु, 'केसव' चराचर जे बेदन बताए हैं।
अजर-अमर अंगी औ-अनंगी सब, बरनि सुनावै ऐसे कौने गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंवर को रुप अवलोकिबे कों, भूपन को रूप धरि विस्वरूप आए हैं॥

शब्दार्थ: मनि पन्नग= मणिधारी सर्प। पतंग= सूर्य। पितृ= पूर्वज। ज्योतिवंत= प्रकाशवान। अंगी= शरीरधारी। अनंगी= अशरीरी। अवलोकिबेकों= देखने के लिए। विस्वरूप= भगवान। अजर= जो कभी वृद्ध न हो।

प्रसंग- महाकवि केशवदास अपने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में सीता के स्वयंवर के अवसर पर मण्डप में उपस्थित सुर-असुर, सिद्ध आदि का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या- ज्योतिषियों ने संसार में अग्नि, वायु, मणिधारी सर्प, सूर्य, पितर आदि जितने तेजस्वी ताये हैं। वेदों ने असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, सागर सहित सभी तीर्थ तथा जितने चर और अचर प्राणियों

का वर्णन किया है; सभी अजर-अमर, निराकार और साकार प्राणियों का वर्णन कर सके, ऐसे गुण किसे प्राप्त हुए हैं ? अर्थात् किसी को नहीं। ये सभी सीता के स्वयंवर में उपस्थित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु स्वयं ही राजाओं का रूप बनाकर सीताजी का स्वयंवर देखने को पधारे हैं।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'पावक-पवन, पतंग-पितृ, जेते-ज्योतिवन्त-जग-ज्योतिषिन, सहित-सिन्धु, बेदन-बताये' में अनुप्रास; 'बरनि सुनावै ऐसे कौन गुन पाये हैं' में वक्रोक्ति से पुष्ट सम्बन्धातिशयोक्ति तथा 'भूपन के रूप धरि विस्वरूप आये हैं' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। 'प्रसिद्ध-सिद्ध, अजर-अमर, अंगी-और-अनंगी' में ध्वनिसाम्य है। 2. शांत रस, ब्रजभाषा एवं घनाक्षरी छंद है। 3. शब्द चयन में अत्यन्त लाघव और कौशल का प्रदर्शन है।

'केशव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेल बई है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ: सातक आठक सों भव तीनिहू लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है।

शब्दार्थ- केशव= राम। मिथिलाधिप= मिथिला के राजा जनक। कीरति= यश। बई= बोई। विधानन= कार्यों। अंग छ: = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द, छ: वेदांग। सात अंग= राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग और सेना। आठ अंग= यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि। वेदत्रयी= तीनों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

प्रसंग- रामचन्द्रजी को महर्षि विश्वामित्र राजा जनक के गुणों से अवगत कराते हुए कह रहे हैं।

व्याख्या- हे राम! ये मिथिलापुरी के राजा जनक हैं, जिन्होंने संसार में अपने यश की बेल को बो दिया है अर्थात् इनका यश संसार में सर्वत्र फैल रहा है। इन्होंने दान, तलवार और राजनीति के नियमों के द्वारा समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में कर रखा है। इनको छहो वेदांग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, ज्योतिष और छंद का ज्ञान है तथा ये राज्य के सातों अंगों से युक्त हैं और योग के आठों अंगों से सम्पन्न हैं। शास्त्र के छह अंगों, राज्य के सात अंगों और योग के आठ अंगों द्वारा इन्होंने तीनों लोकों में अपना प्रभाव जमा रखा है। वेदत्रयी तथा राजश्री दोनों की परिपूर्णता का शुभ योग इनमें हुआ है अर्थात् ये वेदों के ज्ञाता और राजा दोनों ही हैं। यह इनकी विशेषता है।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'जग में जिन', 'बेलि-बई' में अनुप्रास तथा दान-कृपान-विधान, सातक-आठक में ध्वनिसाम्य है। 'कीरति-बेलि' में रूपक और 'जोग' में श्लेष अलंकार है। 2. महर्षि विश्वामित्र रामचन्द्रजी को राजा जनक के गुण बताते हुए उन्हें वेद और राजा दोनों को सिद्ध करते हुए उनकी विलक्षणता का प्रदर्शन करते हैं। 3. ब्रजभाषा भाषा और सवैया छंद है। 4. वेद, राज्य और योग के अंगों का संकेत करके केशव ने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

ताड़का संहारी तिय न विचारी, कौन बड़ाई ताहिं हने ?
मारीच हुते संग प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखबारी गुरु सुखकारी, गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो, सीय स्वयंवर मांझ बरी।

शब्दार्थ: तिय= स्त्री। सकल = सब। खल = धूर्त, दुष्ट। क्रतु= यज्ञ। गौतमतीय= गौतम की पत्नी, अहिल्या। हर= शिवजी। मंड्यो= सुशोभित किया।

प्रसंग: प्रस्तुत छन्द परशुराम और वामदेव के संवाद के रुप में है। वामदेव द्वारा राम का परिचय ताड़का-वधकर्ता के रुप में पाकर परशुरामजी बोले-

व्याख्या: परशुरामजी कहते हैं कि राम ने ताड़का राक्षसी का वध किया, परन्तु यह नहीं विचारा कि वह नारी थी और नारी तो अवध्य है। अत: एक नारी का वध करने में कौन-सी बड़ाई की बात है? राम की यह प्रशंसा व्यर्थ है। तब वामदेवजी कहते हैं कि ताड़का अकेली न थी। उसके साथ सब धूर्त राक्षसों में बली मारीच और सुबाहु भी थे। इन सबको किसी ने नहीं गिना। इतना ही नहीं, यज्ञ की रक्षा करके गुरु विश्वामित्र को सुख देने वाले राम ने गौतम की पत्नी अहिल्या को पवित्र करके उसका उद्धार किया और महादेव जी के धनुष को खण्ड-खण्ड करके संसार को अपने यश से सुशोभित किया। स्वयंवर में सब राजाओं के मध्य में राम ने सीता का वरण किया अर्थात् उनसे विवाह किया। ऐसे शूरवीर जनहितकारी एवं बली राम को आप नहीं जानते, यह आश्चर्य है।

विशेष: 1. **अलंकार-** 'करि-क्रतु', 'सीय-स्वयंवर' में अनुप्रास, 'प्रबल-सकल-खल', 'बारी-कारी', 'मंड्यो-खंड्यो' में ध्वनिसाम्य है। 2. कवित्त छंद एवं संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा में लिखित इन पंक्तियों में केशवदास का संवाद-कौशल झलक रहा है। 3. परशुरामजी द्वारा नारीकी अवध्यता का प्रश्न अनुत्तरित रह गया है।

निज देखौं नहीं शुभगीतहिं सीतहिं कारण कौन कहौ अब हीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं॥
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पणकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं॥

शब्दार्थ : शुभगीतहिं = उत्तम कीर्तिवाली को। हित = प्रेम। सुर मारग = शब्द के मार्ग से, जिस ओर से सीताजी को 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई पड़े थे, उस मार्ग से। त्रास = भय से। दुराय रही = छिप गई।

प्रसंग : जब श्रीराम और लक्ष्मण दोनों पर्णकुटी में लौटकर आये तो पर्णकुटी सूनी देखकर श्रीराम लक्ष्मण से पूछने लगे।

व्याख्या: मैं उत्तम कीर्तिवाली अपनी सीता को यहाँ नहीं रहा हूँ। इसका क्या कारण है ? तुम तुरन्त यह सब बताओ। क्या सीता मुझ पर बहुत प्रेम प्रकट करके वहां शब्द के मार्ग से वन में चली गई, जहाँ मैंने मृग को मारा था और जहाँ से उन्हें 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई दिया था या तुम से उन्होंने कुछ कटु वचन कहे हैं, जिससे लज्जित होकर भय से कहीं छिप गई हैं या क्या यह हमारी वही पर्णकुटी है अथवा कोई दूसरी है ? क्या तुम मेरे भाई लक्ष्मण ही हो या अन्य कोई मायावी पुरुष हो ? भाव यह है कि पुर्णकुटी की सब व्यवस्था विपरीत देखकर राम उसका कारण नहीं जान पा रहे हैं।

विशेष : अलंकार- 1. 'कारण-कौन कहौ', 'मारग-मैं-मृग-मारयो', 'तेहि त्रास' में अनुप्रास अलंकार तथा 'शुभगीतहिं-सीतहिं' में ध्वनिसाम्य है। सम्पूर्ण पद में संदेह अलंकार है। 2. सवैया छंद, ब्रजभाषा एवं वियोग श्रृंगार रस है। 3. इस छंद में उत्तम कोटि की भाव-व्यंजना है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. केशव ने अपने काव्य में किन-किन भाषाओं का प्रयोग किया है ? (सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाएं)।

क. बुन्देलखण्डी ( )

ख. अवधी ( )

ग. छत्तीसगढ़ी ( )

घ. भोजपुरी ( )

2. 'रामचंन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहुछन्द' किसका कथन है? इसका क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए कि केशव रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य हैं।
2. महाकवि केशवदास के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ बताइये।
3. सिद्ध कीजिए कि केशव ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।
4. रामचंद्रिका का महाकाव्यत्व की दृष्टि से आकलन करते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. केशव के प्रकृति वर्णन पर प्रकाश डालिए।

13.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि हिन्दी में केशवदास ने साहित्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र (अर्थात् रस अलंकार, छंद आदि काव्यांगों) का का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत करने का कार्य किया, जिससे वे रीतिकाव्य-धारा के प्रवत्तर्क आचार्य कहलाते हैं। केशव ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' दो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। साम्प्रदायिक दृष्टि से एक अलंकारवादी आचार्य थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वे सर्वांगनिरूपक आचार्य थे। प्रबंधकाव्यों की परंपरा में केशव रचित 'रामचंद्रिका' की गणना होती है। 'रामचंद्रिका' अपने संवाद सौष्ठव में बेजोड़ है। प्रकृति वर्णन, भक्ति वर्णन संबंधी आदि पदों में केशव पर हृदयहीनता का आरोप लगाया जाता है। वस्तुत: उनके व्यक्तित्व में जो अंतर्विरोध मिलता है, वह संस्कृतमय वातावरण में पैदा होने और दरबार से जुड़े होने के कारण है। इस इकाई के संरचनाशिल्प के अध्ययन से इस बात को आप स्वयं अनुभव कर सकेंगे।

13.7 शब्दावली

विष	-	1. जल 2. जहर
अमृतन	-	1. सुधा 2. देवता
जीवनहार	-	1. सांसारिक जीव 2. पानी पीने वाले
अशेष	-	समस्त
प्रक्षालन	-	धोना
पात्रानुकूलता	-	पात्र के अनुकूल, जो पात्र के स्वभाव, शक्ति आदि के अनुसार हो।
लक्षण ग्रंथ	-	जिस ग्रंथ में कविता से संबंधित तत्वों – रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन हो।
मानवीकृत	-	मानवीय रूप,
बारहमासा	-	जिसमें वर्षभर के बारह महिनों का वर्णन हो,यह विरहकाव्य में प्रयुक्त होता है।
प्रशस्ति	-	प्रशंसा,
आलम्बन	-	नायक या नायिका, जिसके कारण रति, क्रोध आदि भाव जाग्रत हो।

उद्दीपन	-	सुख-दुखात्मक भावों को उदीप्त अर्थात् बढ़ाने वाला।
सात्विक	-	पवित्रतायुक्त
सौष्ठव	-	सुडौलपन
आचार्यकवि	-	जो रीतिबद्ध कविता करने के साथ-साथ काव्यशास्त्र की शिक्षा भी देते थे।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. ब. महाकाव्य
2. ब. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रंथ को काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भी कहा जाता है। जिस ग्रंथ में काव्य अथवा कविता से संबंधित तत्वों- रसों, अलंकार, वृत्ति, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन किया जाता है, उसे लक्षण ग्रंथ कहते हैं।
2. ब. चिन्तामणि को।
3. कविप्रिया अलंकार निरूपक ग्रंथ है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. अपने काव्य में कवि जो कहता है या जिस विषय पर प्रकाश डालता है, वह कथ्य है।
2. 1. जहांगीर 2. रतनबावनी
3. 1. कूटनीति से पूर्ण है। 2. शिष्टाचारयुक्त हैं।
   3. पात्रानुकूल हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. काव्य में जहाँ पर जड़ या अचेतन पर मानवीय भावों का आरोप किया जाता है उसे 'मानवीकरण' कहा जाता है।
2. काव्य में जहाँ पर शब्द अपने मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ को छोड़ व्यंग्य अर्थ का बोध कराते हैं, वह व्यंग्यार्थ कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. क. सिरताज ख. सतरंज

ग. बाजी घ. फरमान

ङ. महल

2. शैली की दृष्टि से केशव ने रामचंद्रिका में **प्रबंधशैली** व रसिकप्रिया में **मुक्तक शैली** को अपनाया है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. क. बुंदेलखंडी (✓) ख. अवधी (✓)

ग. छत्तीसगढ़ी (×) घ. भोजपुरी (×)

2. यह कथन केशवदास का है। इस कथन का अर्थ है कि 'मैं रामचंद्रिका में श्री रामचंद्र जी की शोभा का वर्णन विविध छंदों के माध्यम से कर रहा हूं।'

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति चंद्र, (नवम सं. 2010), हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*

2 शुक्ल, रामचंद्र, (2010 तृ सं.), हिन्दी साहित्य का इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*

3. सक्सेना, द्वारिकाप्रसाद, (1985-86), हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, *विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*

4. सिंह, वासुदेव, (1993), हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, *संजय बुक सेंटर, वाराणसी।*

5. नगेन्द्र, (1983), रीति-काव्य की भूमिका, *नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली* ।

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. महाकवि केशव दास का जीवन परिचय देते हुए उनके संपूर्ण साहित्यिक रचना विकास पर विस्तृत निबंध लिखिए।
2. रीतिकालीन कवि एवं आचार्य केशव दास की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनका महत्व प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 14 घनानन्द - परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 रीतिमुक्त कवि घनानन्द
14.3.1 नाम संबंधी विवाद
14.3.2 घनानन्द और सुजानं
14.4 घनानन्द की रचनाएँ
14.4.1 घनानन्द की कविता- संदर्भ सहित व्याख्या
14.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
14.5.1 घनानन्द की काव्यानुभूति - भावपक्ष
14.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

यह इकाई रीतिकालीन कवि घनानन्द से संबंधित है। पूर्व में आप पढ़ चके हैं कि रीतिकाल में तीन प्रकार की काव्य-रचना होती थी, और इसी आधार पर ये कवि भी तीन प्रकार के थे - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। जो कवि काव्यांगों (रस, अलंकार) के लक्षण उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्य शक्ति का उपयोग करते थे वे रीतिबद्ध कवि कहलाते हैं। (चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम,देव,भूषण, पद्माकर आदि) जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परन्तु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रन्थों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है (बिहारी, बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, सेनापति आदि) तथा जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और नहीं रीतिकालीन परम्परा व प्रवत्ति से प्रभावित हुए, वरन् स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करते रहे उन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। घनानन्द ऐसे ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि हैं। इस इकाई में आप घनानन्द के जीवन वृत्तांत एवं उनकी काव्य रचनाओं तथा उनके काव्य की विशेषताओं से परिचित होंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में आपको रीतिमुक्त कवि घनानन्द के जीवन एवं उनके काव्य से परिचित कराया जायगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि के रूप में घनानन्द के महत्व को समझ सकेंगे।
- घनानन्द की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का पाठ कर उसके अर्थ को समझ सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

14.3 घनानन्द - परिचय

हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों अर्थात् आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के प्रमुख कवियों के जीवन के विषय में दृढ़ता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन सभी कवियों ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। आदिकाल के चंद कवि अथवा नरपति नाल्ह किसी का भी जीवन परिचय पूरा नहीं मिलता। इस काल के पश्चात् यदि भक्तिकाल की ओर दृष्टि डालें तो वहाँ भी निराशा ही होती है। कबीर हो या सूर अथवा तुलसी सभी कवियों ने अपने विषय में इतना कम लिखा है कि वह उन पर पूर्ण प्रभाव डालने में असमर्थ है। इसी प्रकार रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द भी अपवाद नहीं हैं। उनका प्रेमवत्सल हृदय अपने प्रेमी की महिमा का वर्णन करने में ही मस्त रहता था। अब हम घनानन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

14.3.1 नाम सम्बन्धी विवाद

वास्तव में हिन्दी साहित्य में केवल एक ही घनानन्द नहीं हुए, इस नाम के अन्य कवि भी मिलते हैं। इसी से स्वच्छन्द काव्य धारा के घनानन्द के नाम की प्रमाणिकता का प्रश्न सामने आता है। इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। घनानन्द, आनन्द घन और आनन्द-इन तीनों नामों में विवाद हैं, कि रीतिकालयुगीन घनानन्द कौन है ?

डॉ0 ग्रियर्सन ने आनन्द को ही रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि घनानन्द माना है। उनके मत में 'घन' शब्द आनन्द के साथ नहीं, पर वे 'आनन्द' ही घनानन्द हैं। परन्तु अत्याधुनिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि 'आनन्द' एक स्वतंत्र कवि थे, जिन्होंने कोक मंजरी की रचना की थी-

''कायस्थ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार

कोक कला इहिरूचि करन जिन यह किये विचार''

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत में भी ग्रियर्सन वाले 'आनन्द' घनानन्द नहीं हैं, क्योंकि दोनों के रचनाकाल में लगभग चालीस वर्षों का अन्तर है।

घनानन्द के नाम के संबंध में दूसरा मुख्य विवाद 'आनन्द घन' नाम को लेकर है। 'आनन्द घन' नाम के तीन व्यक्ति मिलते हैं।

1. जैन धर्मी घनानन्द
2. वृन्दावन के आनन्द घन
3. नन्दगॉव के आनन्द घन

श्री क्षितिमोहन सेन ने नवम्बर सन् 1938 में वीणा मैं 'जैन धर्मी आनन्द घन' शीर्षक लेख में वृन्दावन के आनन्द घन और जैन धर्मी आनन्द घन-दोनों एक ही व्यक्ति के नाम होने की सम्भावना प्रकट की है। श्रीमती ज्ञानदेवी ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति माना है किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक घनानंद और आनन्दघन की भूमिका में इस विवाद को समाप्त करते हुए यह सिद्ध किया है कि जैनधर्मी घनानन्द और वृन्दावन के आनन्दघन दोनों एक व्यक्ति नहीं थे - भिन्न भिन्न व्यक्ति थे क्योंकि दोनो व्यक्तियों के काव्य के रचना काल में समानता नहीं है और न ही उनके काव्य में कोई समानता है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के रचना काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। जैन धर्मी घनआनन्द का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, और वृन्दावनवासी 'आनन्दघन' का समय विक्रम की 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

जैनधर्मी 'घनआनन्द' और वृन्दावन के 'आनन्दघन' के पश्चात तीसरा नाम नन्दगॉव के आनन्दघन का आता है। यह चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक कवि ठहरते हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के घनानन्द के समय में और नन्दगॉव के आनन्द घन के समय में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर है। रीतिमुक्त घनानन्द का समय आठ वीं शताब्दी और नन्दगॉव के आनन्दघन का समय की 16 वीं शताब्दी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानन्द का समय सन् 1774 से 1796 तक माना हैं। इस प्रकार वृन्दावन के आनन्दघन ही रीतिमुक्त घनानन्द हैं। शुक्ल जी के विचारानुसार यह नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गये। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत भी इनसे मिलता है कवि का मूल नाम आनन्दघन ही रहा होगा, परन्तु छन्दात्मक लय विधान इत्यादि के कारण यह स्वयं ही आनन्दघन से घनानन्द हो गया। हिन्दी साहित्य में यह अपवाद नहीं, क्योंकि सूरदास के भी सूर, सूरजदास, सूरजश्याम और सूरज आदि नाम मिलते हैं।

जन्म तिथि व जन्मस्थान - घनानन्द के जीवन के लगभग सभी महत्वपूर्ण तथ्य विवादास्पद हैं नाम, जन्म स्थान, रचनाएँ, जन्मतिथि आदि। इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच मतभेद हैं। लाला भगवानदीन के अनुसार घनानन्द का जन्म संवत् 1715 को हुआ, परन्तु शुक्ल जी ने इस संवत् को न मानकर संवत् 1746 में इनका जन्म माना है। इसी प्रकार अन्य आलोचकों ने इनकी जन्मतिथि के विषय में अलग-अलग मत दिये है विभिन्न विद्वानों के मतों की आलोचना करने के पश्चात डॉ0 मनोहर लाल गौड़ ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में लिखा है- 'संम्वत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 27 वर्ष के ये होते हैं। जो इनके दीक्षा वृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है।'

जन्म तिथि की ही भाँति घनानन्द के जन्म स्थान का विषय भी विवाद का विषय है। कुछ आलोचक उन्हें हिसार निवासी मानते हैं, तो अन्य उन्हें बुलन्दशहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आसपास का होना मानते हैं। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इन्हें बुलन्दशहर का निवासी माना है श्री बहुगुणा के विचार में यह कोट-हिसार के रहने वाले थे। घनानन्द के काव्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता कि वह कहाँ के रहने वाले थे। यह भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृन्दावन चले गये थे इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में ब्रज और वृन्दावन का वर्णन सजीवता के साथ किया है, उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता अन्यथा उनके काव्य में (ब्रज संस्कृति) इतना सुन्दर ब्रज का चित्रण नहीं मिलता हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुजान के प्रेम में धोखा खाकर ये वृन्दावन चले गये होंगे।

14.3.2 घनानन्द और सुजान

घनानन्द के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना जिसका उल्लेख प्रायः सभी विद्वानों ने किया है, इस प्रकार है-घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रँगीले के 'खास-कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे। मुहम्मद शाह के दरबार की सुजान नाम की वैश्या से वे जी जान से प्रेम करते थे। सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी और बादशाह के खास कलम इन दोनों बातों के कारण दरबारी इनसे ईर्ष्या करते थे। उन्होंने इन्हें राज्य से निष्कासित करने का षड्यन्त्र रचा। एक दिन दरबार में उन सबने बादशाह से घनानन्द की गान कला की प्रशंसा की। मुहम्मद शाह ने घनानन्द से गाने को कहा पर घनानन्द ने विनम्रता पूर्वक गाना सुनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, इस पर उन षड्यन्त्रकारियों ने कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाय और वह घनानन्द से गाने का अनुरोध करे तो वे अवश्य गायेंगे। सुजान बुलाई गई और घनानन्द ने सचमुच सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया। गाने ने सभी को मन्त्रमुग्ध कर दिया, किन्तु गाने के प्रभाव से मुक्त होने पर बादशाह अत्यधिक नाराज हुआ क्योंकि एक तो घनानन्द ने राजा की आज्ञा की अपेक्षा सुजान के अनुरोध को महत्व दिया दूसरे राजा की ओर पीठ व सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया इस बेअदबी को बादशाह सहन न कर सका और उसने घनानन्द को देश निकाला दे दिया कहते हैं कि राज्य छोड़ते समय ये सुजान के पास गये। और उससे साथ चलने को कहा परन्तु उसने अपने जातीय गुणों की रक्षा की और साथ चलने से इन्कार कर दिया। वे खिन्न और विरक्त भाव से राज्य छोड़कर चल दिये और वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। अधिकांश विद्वानों ने घनानन्द का सुजान से प्रेम, बादशाह रँगीले द्वारा देश निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानन्द के जीवन का अन्तिम समय वृन्दावन में बीता।

मृत्यु - घनानन्द की मृत्यु की तिथि भी उनकी जन्म तिथि के समान ही विवादास्पद है इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद के निष्कर्ष मान्य हैं। अन्य आलोचकों ने माना है कि घनानन्द की मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय हुई थी। परन्तु विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के मत से उनकी मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय न होकर अहमद शाह अब्दाली के मथुरा पर किये गये द्वितीय

आक्रमण के समय संवत् 1817 (सन् 1679) में हुई थी। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार सन् 1796 में नादिरशाह ने मथुरा पर नहीं, दिल्ली पर आक्रमण किया था, जबकि अहमदशाह अब्दाली ने मथुरा पर पहला आक्रमण सन् 1893 में और दूसरा आक्रमण सन् 1897 में किया था, इन दोनों आक्रमणों का वर्णन वृन्दावन दास कृत 'हरिकला' बेलि में मिलता है-

''ठारह सै सत्रहहौं वर्ष गत् जानियै।
साढ़ वदी हरिबासर बेल बखानियै''

घनानन्द की अभिलाषा थी कि वे ब्रज में लोटते हुए अपने प्राण दें और उनकी यह इच्छा पूरी हुई।

घनानन्द का सम्प्रदाय - घनानन्द के काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनके ग्रन्थ परमहंस-वंशावली में उन्होंने अपने शुरू की परम्परा का वर्णन किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रेम-लक्षण अनुरागात्मिकता परमभक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। घनानन्द की भक्ति पर इस सम्प्रदाय की अर्थात गोपी या सखी भाव की पूर्ण छाया परिलक्षित होती है इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द ग्रंथावली' की भूमिका में एक स्थान पर कहा है- ''प्रेम साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े-बड़े साधकों, सिंद्धों को पीछे छोड़कर 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गये थे। अतः सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था'' निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखी नाम' लेना पड़ता है। अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी' घनानन्द के साहित्य में कई कृतियों में इस नाम का उल्लेख मिलता है, जहाँ कवि ने घनानन्द के स्थान पर 'बहुगुनी' नाम से लिखा है।

''नीको नांव बहुगुनी नाम मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।।
राधा नांव बहुगुनी राखो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यो''।।

14.4 घनानन्द की रचनाएँ

घनानन्द की विलुप्त और बिखरी हुई रचनाओं को समेटने का प्रयत्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सुंदरी तिलक' नाम से किया। इसके बाद सन् 1870 ई. में 'सुजान शतक' नाम से 119 कवित्त सामने आए। 1897 ई. में जगन्नाथदास रत्नाकर ने सुजान सागर निकाला। सन् 1907 में काशी प्रसाद जायसवाल ने 'वियोग बेलि', 'विरह लीला' का प्रकाशन किया। इसी क्रम में 'घनानन्द रत्नावली' का प्रयाग से प्रकाशन हुआ। 1943 में शम्भु प्रसाद बहुगुणा ने 'घनाआनन्द' नाम से पुस्तक प्रकाशित की। किन्तु इन सभी रचनाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से संपादन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया। इनका पहला संग्रह 'घनानंद कवित्त' (505 पद्य) नाम से आया। इनका दूसरा संग्रह 'सुजान हित' प्रबन्ध 701 कवित्त सवैया छंदों का आया। अंततः मिश्र जी ने 'घनआनंद ग्रंथावली' को 1952 में संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इसमें ''प्रेम सरोवर,''

''प्रेम पहेली,'' ''ब्रज वर्णन'' तथा 'सुजान हित' को समाहित किया गया। अब इस ग्रन्थावली में 1068 पद हैं इधर ''वृन्दावन मुद्रा'' ''प्रेम पत्रिका'' तथा ''प्रकीर्णन'' और आए हैं। तथा अन्य रचनाओं का अनुसंधान कार्य जारी है। अब ये काव्य छंद 4108 तक उपलब्ध हो गए हैं। घनानन्द ग्रन्थावली में संकलित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं-

1. सुजान हित
2. कृपाकंद
3. वियोग बेलि
4. इश्कलता
5. यमुना यश
6. प्रीति पावस
7. प्रेम पत्रिका
8. प्रेम सरोवर
9. ब्रज विलास
10. सरस बसंत
11. अनुभव चंद्रिका
12. रंग बधाई
13. प्रेम पद्धति
14. वृष भानुपुर सुषमा वर्णन
15. गोकुल गीत
16. नाम माधुरी
17. गिरि पूजन
18. विचार सार
19. दान घटा
20. भावना प्रकाश
21. कृष्ण कौमुदी
22. धाम चमत्कार
23. प्रिया प्रसाद
24. वृंदावन मुद्रा
25. ब्रज स्वरूप
26. गोकुल चरित्र
27. प्रेम पहेली
28. रसना यश
29. गोकुल विनोद
30. ब्रज प्रसाद
31. मुरलिका मोद

32. मनोरथ मंजरी
33. छन्दाष्टक
34. त्रिभंगी
35. परम हंस वंशावली
36. ब्रज व्यवहार
37. गिरि गाथा
38. पदावली
39. प्रकीर्णक (स्फुट)

14.4.1 संदर्भ सहित व्याख्या

अब हम घनानन्द के कुछ पदों की संदर्भ सहित व्याख्या करेंगे। इससे आपको घनानन्द के काव्य की व्याख्या करने में मदद मिलेगी।

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन मैं छवि-फूलन की, वर्षा उर ऊपर जाति ह्वै ।।
लटलोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वैं।
अंग-अंग तरंग उठैं दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।।

संदर्भः- घनानन्द द्वारा रचित यह सवैया विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'घनानन्द कवित्त' पुस्तक से लिया गया है इस सवैये मैं कवि ने अपनी प्रिया 'सुजान' के रूप सौन्दर्य का स्वानुभूत वर्णन किया है।

प्रसंगः- सुजान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

व्याख्या-नायिका का अत्यन्त सुन्दर गौर मुख चमक रहा है और उस पर कानों तक फैले हुए प्रेमोन्मत नेत्र सुशोभित हो रहे हैं; जब वह हँसकर बोलती है तो ऐसा लगता है मानो उसके उसके वक्षस्थल पर शोभा के फूलों की वर्षा हो रही है; कपोलों पर चंचल लटें हिलती हुई क्रीड़ा कर रही हैं और सुन्दर कंठ में दो लर की मोतियों की माला शोभा दे रही है; उसके अंग-प्रत्यंग की कान्ति से शोभा की लहरें-सी उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अभी पृथ्वी पर रूप चू पड़ेगा।

विशेषः-

(1) आलम्बन-विभाव का मोहक रूप-चित्रण हुआ है।
(2) प्रथम पंक्ति में 'छके' की शब्द में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है। नेत्रों में प्रेम की खुमारी की परिपूर्णता को व्यंजित करने के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।
(3) तृतीय पंक्ति में 'क' तथा 'ल' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास है।
(4) 'अंग-अंग (चतुर्थ पंक्ति) में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार और 'परिहै मनौ च्वै' में उत्प्रेक्षा

अलंकार स्पष्ट है।

(5) भाषा का माधुर्य और लालित्य भी सुकोमल सौन्दर्य-चित्रण के अनुरूप ही है।

छवि कौ सदन, मोदमंडित बदन-चन्द,
तृषित चखनि लाल, कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करे, मटकीली भाँति सों ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौं।।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौं।
बिरह-जगत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि, आनंद को धन बरसायहौं।।

सन्दर्भः-विरहिणी नायिका अपने प्रियतम की रूप-माधुरी का स्मरण कर व्याकुल हो रही है और पुनः उसके दर्शन की लालसा से विवश होकर विनय कर रही है।

व्याख्याः- हे प्रियतम ! तुम अपने प्रफुल्ल, शोभा के भण्डार चन्द्रमा रूपी मुख को न जाने कब तक मेरे इन प्यासे नेत्रों को दिखलाओगे और न जाने कब भड़कीला वेश धारणकर नाज-नखरों-सहित ढंग से अधरों पर बाँसुरी बजाते मस्ती से झूमते हुए आओगे, तथा नेत्रों को चलाते हुए मन्द-मन्द मुस्कराहट के साथ, चंचलता पूर्वक स्नेह-सिक्त बातें करोगे न जाने कब तक हे कृपा के सागर, प्राण-प्रिय ! हृदय में मुझे विरहाग्नि से दग्ध होता हुआ जानकर, प्रेमानन्द की वर्षा कर प्राण-दान दोगे ?

विशेषः-

(1) विरह की दस काम-दशाओं में से 'स्मृति' तथा 'अभिलाषा' का मार्मिक चित्रण हुआ है।
(2) 'तृषित चखनि' (द्वितीय पंक्ति) में लक्षणा-मूला-शब्दी-व्यंजना है।
(3) 'मृदु मुस्क्यानि' (पंचम पंक्ति) में छेकानुप्रास और 'जरत जिय' जानि (सप्तम पंक्ति) में वृत्यानुप्रास दर्शनीय है।
(4) अन्तिम पंक्ति में 'कृपानिधि' लाल (कृष्ण) का साभिप्राय-विशेषण होने से परिकर अलंकार है।
(5) 'बदन चन्द्र' (प्रथम पंक्ति) में उपमेय पर उपमान (चन्द्र) का आरोप होने से रूपक अलंकार है।
(6) 'जानि-आनि' (सप्तम पंक्ति) में सुन्दर पद-मैत्री है।

भोर तैं साँझ लौं कानन-ओर निहारिति बाबरी नैक न हारति।
साँझ तैं भोर तारिन ताकिबौ तारनि सों इकतार न टारति।।

जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोंहन जोहिन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।

सन्दर्भः-इस सवैया में विरहिणी-नायिका की मनः स्थिति का बड़ा ही यथार्थ आकलन किया गया है।

व्याख्याः-वह बावली विरहिणी-नायिका प्रातःकाल से सायंकाल तक जंगल की ओर ही देखती रहती है और तनिक भी नहीं थकती, संध्या से प्रातःकाल तक वह अपनी आँखों से इकटक निहारती हुई ही वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती (अर्थात् तारों को इकटक निहारती हुई वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती है); और यदि कहीं प्रिय दिखाई पड़ जाता है तो निरन्तर अश्रुप्रवाह के कारण उसके दर्शन-लाभ के सुअवसर को भी वह खो देती हैं; इस प्रकार उस विरहिणी के आँखों के हदय में प्रियतम को सदैव समक्ष देखने की लालसा बनी ही रहती है।

विशेषः-

(1) प्रिय-मिलन की आशा में प्रतीक्षा के क्षण कष्ट सहकर भी कितने मधुर होते हैं, इस मनोवैज्ञानिक-सत्य का उद्घाटन प्रथम दो चरणों में बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से किया गया है।
(2) 'आँखिन के उर' में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है।
(3) 'निहारति-हारति' (प्रथम पंक्ति) में सभंग पद यमक है।
(4) द्वितीय चरण में 'तारनि' में यमक अलंकार है - तारनि (प्रथम) तारागण; तारनि (द्वितीय) पुतलियाँ।

पाप के पुंज सकेलि सु कोन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।।
क्यों धनआनन्द धीर धरै बिन पाँख निगोड़ी मरै अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई।

सन्दर्भः-इस सवैया में स्नेही-कवि प्रिय सुजान के रूप-दर्शन के अभाव में अपने नेत्रों की अवस्था का वर्णन करता हुआ कह रहा है-

व्याख्याः- न जाने कौनसी अशुभ घड़ी में, संपूर्ण पापों के समूह को एकत्र करके विधाता ने मेरे इन नेत्रों की रचना की है; इतना ही नहीं बल्कि रूप के लोभी इन नेत्रों को प्रेम के रंग में भिगोने के उपरान्त भी सुजान की आँखों से मिला दिया है; फिर भला किस प्रकार से धैर्य धारणा करें, प्रिय सुजान के सहारे के बिना अथवा उन तक पहुँचने के आधार पंखों के अभाव में ये अभागे नेत्र विवशता में अकुलाकर मरे जा रहे हैं; इस प्रकार दुःख के मारे ये नेत्र प्रिय-दर्शन के प्यासे आँसुओं से भरे हुए, प्रिय सुजान का मुख देखने के लिए तड़पते हुए बरसते रहते हैं।

विशेषः-

(1) नेत्रों की नैसर्गिकता के प्रति विरही-कवि की खीझ बड़ी मार्मिक बन पड़ी है।
(2) 'विरंचि बनाई' (प्रथम पंक्ति); 'धीर धरै' (तृतीय पंक्ति) में 'ब' तथा 'ध' वर्णों की क्रमशः दो बार आवृति होने से छेकानुप्रास अलंकार स्पष्ट है।
(3) 'पाँख' (तृतीय पंक्ति) में श्लेष अलंकार है- सहारा; पंख
(4) 'प्यास-भरी' बरसै' में विरोधाभास अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (☐) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द के जीवन के लगभग सभी तथ्य विवादग्रस्त हैं ( )
ख) हिन्दी साहित्य में घनानन्द नाम के कवि केवल एक है।( )
ग) घनानन्द कवि का सम्बन्ध वल्लभ सम्प्रदाय से था। ( )
घ) घनानन्द का अन्तिम समय वृन्दावन में व्यतीत हुआ। ( )

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) डॉ0 ग्रियर्सन के मत में .....ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानन्द हैं।
ख) लाला भगवानदीन ने घनानन्द के जन्म की तिथि.....मानी है।
ग) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानन्द की मृत्यु .....के मथुरा आक्रमण के समय हुई।
घ) घनानन्द की कई कृतियों में उनके.....नाम उल्लेख मिलता है।

2. घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (☐) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) रामचन्द्र शुक्ल ने घनानन्द की बिखरी और विलुप्त सामग्री को समेटने का प्रयत्न किया। ( )
ख) घनानन्द के पहले काव्य संग्रह 'घनानंद कवित्त ' में 505 पद हैं ( )
ग) वियोग बेलि और इश्क लता घनानन्द की ही रचनाएँ हैं। ( )
घ) घनानन्द रत्नावली का प्रकाशन वाराणसी से हुआ। ( )

(2) निम्नलिखित पंक्तियों में अर्थालंकार पहचानिये ?

(क) ''ऐरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन, बीरी
तो सो और कौन मनै ढरकौंहीं बानि है।''

(ख) ''तब हार पहार से लागत हैं; अब आनि के बीच पहार परे''

(3) निम्नांकित पंक्तियों के अर्थ बताइये।

(क) ''रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै''।

(ख) अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं ।

14.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

घनानन्द मूलतः अति संवेदनशील प्रेम के कवि हैं अतः उनके काव्य का आधार और भावपक्ष प्रेम ही है। किंतु यह प्रेम रीतिकाल के रीतिसिद्व और रीतिबद्ध परम्परा वाला चमत्कारिक और कृत्रिम प्रेम नहीं है। सबसे पहले हम घनानन्द काव्य का भावपक्ष अथवा उनकी काव्यनुभूति का विश्लेषण करेंगे।

14.5.1 घनानन्द की काव्यनुभूति अथवा भावपक्ष -

घनानन्द अति संवेदनशील प्रेम कवि है अतः उनके काव्य का आधार प्रेम ही है। घनानन्द का प्रेम स्वानुभूत, स्वाभाविक और रूढ़ियों से मुक्त स्वच्छन्द प्रेम है, जिसका आधार, जैसा कि आप जानते है कि कई विद्वानों ने उनकी प्रेमिका सुजान को माना है। स्वच्छन्द प्रेम होते हुए भी घनानन्द के प्रेम वर्णन में अश्लीलता नहीं है। उनका प्रेम विरह प्रधान है। विरह में ही घनानन्द प्रेम की गहन अनुभूतियों को अनुभव करते हैं। प्रेम के अतिरिक्त घनानन्द ने कुछ भक्तिपरक रचनाएँ भी की हैं - जिनकी चर्चा भी हम करेंगे।

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना - हिन्दी साहित्य काव्य परम्परा में शायद ही कोई घनानन्द सा प्रेमी कवि हुआ होगा। वैसे आप जायसी की नागमती, मीरा की विरहाकुलता और सूर की वियुक्ता गोपियाँ से भली भाँति परिचित हैं लेकिन घनानन्द का दर्द, वेदना की तीव्रता और तड़प, प्रेम जगत में उन्हें सर्वोच्च पद पर आसीन करती है। घनानंद का स्वच्छन्द प्रेम शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह करता दिखाई देता है। यह प्रेम लौकिक रीति से शुरू होकर राधा कृष्ण के भक्ति रस तक विस्तार पाता है। प्रेम में मिले विरह ने घनानंद को नया भाव लोक प्रदान किया। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता तथा माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग श्रृगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं0 320)। प्रेमी घनानंद सुजान (प्रेमिका) तथा सुजान (राधा कृष्ण) बराबर पुकारते रहे। अपनी प्रेमिका के नाम को उन्होंने कृष्ण में मिला दिया। भक्ति की तो भी सुजान के नाम से भले ही आलम्बन बदल गया हो। अब तक आप समझ चुके होंगें कि लौकिक अर्थ में सुजान प्रेमिका के लिए और भक्ति भाव में सुजान राधा कृष्ण के लिए प्रतीक रूप में आया है। कारण यह चातक भाव का प्रेम है।

आप इस बात से अवगत हैं कि घनानंद सुजान नाम की वेश्या के प्रेम में बँधे हुए थे उसके प्रेम ने ही उन्हें प्रेम की समस्त अवस्थाओं में से गुजरने का अससर प्रदान किया। प्रेयसी सुजान का नाम ही उनकी कविता में प्रेम रसायन का सार है। यह नाम उनके चेतन-अवचेतन मन में इस प्रकार बस गया कि किसी भी स्थिति में छूटने का नाम नहीं लेता। घनानंद में प्रेम का भावपक्ष पूरी तरह मौजूद है लेकिन विभाव पक्ष का चित्रण कम है। उनके प्रेम वर्णन में प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है हृदय के उल्लास और लीनता की ही है। प्रेम के विषय में घनानंद ने जो धारणा अभिव्यक्त की है उसके अनुसार प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी, चतुराई और लोभ की जगह नहीं होती।

'' अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं
तहे साँधे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जें निसाँक नहीं
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ आँक नहीं
तुम कौन धौ, पाटी पढे हो लला मन लेंहु पै देहु छटाँक नहीं

घनानन्द द्वारा चालाकी या सयानेपन की निंदा और सरलता एवं सहजता की प्रशंसा से यही सिद्ध होता है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सात्विकता में विश्वास करते हैं। घनानन्द के प्रेम निरूपण से सिद्ध होता है कि उनका प्रेम एकपक्षीय है, प्रतिदान की कामना उसमें नहीं है।

प्रेम का संयोग पक्ष - घनानन्द के काव्य में सर्वंत्र प्रेम का साम्राज्य है। जब तक सुजान का साथ उनके भाग्य था उन्होंने उसे आनन्दपूर्वक भोगा और सराहा परन्तु भाग्य ने अधिक समय तक उनका साथ नहीं दिया। सुजान उनसे वियुक्त हो गई परन्तु उसकी स्मृति की तीव्रता ने मानसिक रूप से उन्हें सुजान के समीप ही रखा। घनानन्द के काव्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या वियोग की तुलना में अत्यन्त अल्प है लेकिन इस अल्प सुख का उन्होंने अत्यन्त खुले रूप में चित्रण किया है घनानन्द ने संयोग के वर्णनों मे रीझ, उत्सुक्ता, लालच, रोम-रोम का आनन्द से भरना, तथा अंग-प्रत्यंग से प्रसन्नता फूटना, संयोग के समय शताधिक भावनाओं का तीव्र गति से आना प्रेमी का अपने शरीर पर से शासन उठ जाना आदि बातों का कितना सजीव चित्रण किया है -

''ललित उमंग बेलि आल बाल अन्तर ते।
आनन्द के धन सींची रोम-रोम है चढ़ी।
आगम- उमाह चाह छायौ सु उछाह रंग।
अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नोकें इन है पढ़ी।''

प्रेम का वियोग पक्ष - घनानन्द के विरह वर्णन के संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं - ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही

इनकी दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद प्रसिद्ध है। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तवृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बिहारी माप से मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर है - बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना है, न उछल-उछल कर भागना है'' घानानन्द के विरह वर्णन के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार दिये हैं, परन्तु एक बात सभी में समान रूप से मिलती है और वह है घनानन्द में 'प्रेम की पीर'। सभी ने इनकी 'पीर' को विलक्षण माना है और उससे अधिक पीर की अभिव्यक्ति।

घनआनन्द के विरह-वर्णन के संबध में जितना कहा जाय वह कम है, क्योंकि इस 'प्रेम की पीर' के कवि ने अगर कुछ लिखा है तो वह 'विरह' है। यह विरह इतना गम्भीर है, अथाह है कि उसकी थाह पाने के लिए -

''समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन नेही की पीर तकी''

की आवश्यकता है। और इसे तो कोई रसिक ही समझ सकता है जिसने प्रेम की पीड़ा को हृदय की आँखों से साकार देखा है।

रूप सौन्दर्य का वर्णन - रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि है। अपनी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य पर वे इतने आसक्त थे कि उसे देखते हुए वे कभी तृप्त नहीं होते थे। घनानन्द ने सुजान के रूप का वर्णन परम्परागत चमत्कारिक ढंग से या रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह लक्षण ग्रन्थों के आधार पर नहीं किया है, बल्कि 'सुजान' कवि को जिस जिस रूप में आकर्षित करती रही उन्हीं रूप छवियों के वर्णन की ओर घनानन्द प्रवृत्त हुए। घनानन्द के रूप सौन्दर्य वर्णन में मांसलता है, सूक्ष्मता है, नयी भावनाओं एवं कल्पनाओं का योग है। बाहय रूप सौन्दर्य के साथ-साथ घनानन्द ने सुजान के भीतरी मानसिक सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। निम्नलिखित पद में उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन अनुभूति की सजगता के साथ, अत्यन्त सादगी से किया है -

''सोभा बरसीली सुभ सों लसीली
सु रसीली हंसि हैरैं बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि में
देखी पैज-पूरी, प्रीति-नीति को थपति है।
जाके गुन बंधे मन छूटे और ठौरनि तें
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप उपार घनाआनंद उकति ओछी
जतन जुगति जोन्ह कौन बपै नपति है''

इस छंद से आपको यह बात स्पष्ट हो चुकी होगी कि घनानन्द ने स्वानुभूत रूप सौन्दर्य का ही वर्णन किया हैं न कि रीति कवियों की तरह चमत्कारिक रूप का।

घनानन्द की भक्ति भावना - आप इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि घनानन्द पूर्ण रूप से प्रेम के ही कवि हैं, किन्तु जीवन के उत्तरार्ध में वे राधाकृष्ण के प्रति भक्ति भाव रखकर भक्तिपरक रचनाएँ करने लगे। सुजान द्वारा ठुकराये जाने पर उन्होंने लौकिक जीवन से मानसिक रूप से अपना नाता तोड़कर श्रीकृष्ण से नाता जोड़ लिया। एक पद में भौतिक स्नेह, ऐश्वर्य और धन की घोर निंदा करते हुए अपनी वैराग्य भावना का परिचय देते हुए वह कहते हैं।

''देह सौ स्नेह सो तौ हवै खेह-खिन ही मैं,
नाते सब होते परि रहै गौ नहीं रे नाम।''

राधाकृष्ण के प्रति अपनी असीम भक्ति, गहन आस्था श्रद्धा व अटूट विश्वास प्रकट करते हुए वे लिखते हैं-

''राधा रमन की बलि जाऊँ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रहि दुरम बेलि।
महा अनुपम रुप में शोभा लहलहानि रस झेलि।
आपु बन धन आपु तन मन है रहत निसि भोर''

घनानन्द ने सूफी भाव की इस मान्यता को तो अस्वीकार किया है कि आत्मा पुरूष और परमात्मा स्त्री है। किन्तु आत्मा की तड़त, बेचैनी, व्यग्रता, अंतस की टीस आदि सूफी काव्यधारा की विरहगत स्थितियों को उन्होंने स्वीकार किया है। 'वियोगबेलि' और 'इश्क लता' में यह फारसी प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है। घनानन्द ने जो स्वच्छन्दता प्रेम के क्षेत्र में दिखाई वही स्वछन्दता भक्ति के क्षेत्र में भी दिखाई अतः उनके प्रेम और भक्ति को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

14.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार -

अभिव्यंजना, पक्ष में हम घनानन्द की काव्यभाषा पर विचार करेंगे। आप देखेंगे की घनानन्द की काव्यभाषा में मधुरता, ध्वन्यार्थकता वक्रता और व्यंजकता आदि गुण विद्यमान हैं। घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए किया है न कि उसमें चमत्कार लाने के लिए। जहाँ तक छंद का प्रश्न है - घनानन्द ने कवित्त और सवैया इन दो छंदो का ही प्रयोग अपने काव्य में किया है।

काव्य भाषा - काव्य शिल्प की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का आकलन किया जाय तो सर्वप्रथम दृष्टि भाषा पर जाती है। रीतियुग ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा इस समय ब्रजभाषा की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक हो गई थी। घनानन्द को विरासत में विकसित भाषा मिली। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा की आलोचना करते हुए

द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते हैं - ''घनानन्द ने बड़ी स्वच्छता और सुन्दरता के साथ ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, उसके एक एक शब्द की स्थापना की है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए गति प्रदान की है। ब्रजभाषा पर ऐसा अधिकार अन्य किसी हिन्दी कवि का नहीं दिखाई देता''

घनानन्द की भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों से युक्त है। औटपाय (उपद्रव) आवस (भाप) औंड (गहरी) सल (पता) सहारि (सहारे से) तेह (क्रोध) दुहेली (दुःखपूर्ण) आवरो (व्याकुल) न्यार (चारा) सौंज (सामग्री) भाभक (ज्वाला) हेली (खेल करने वाले) भोयौ (भीगा हुआ) गुरझिन (गाँठ) इत्यादि ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों से उनकी काव्यभाषा अत्यन्त समृद्ध हो उठी है।

ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ ही घनानन्द ने नये और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे - गादरौं (शिथिल) अंगेट, सौनि (कुंदन का लाल वर्ण) विरचैं (विमुख होना) हटतार (एकटक देखना) चाड़ (उत्कण्ठा) उखलि (अपरिचित) मरक (सिंचाव) तपै (तपना) सवादिली (स्वादिष्ट) निरौठी (मस्त) आदि।

भाषा प्रवीण घनानन्द ने तत्सम शब्दों का भी खूब प्रयोग किया हैं - मीन, पंकज, खंजन, प्राण, विष, कुंज, कुरंग, मलय, अर्क। संस्कृत शब्दों की संख्या तद्भव शब्दों से अपेक्षाकृत कम है। घनानन्द ने अपने काव्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का किया हैं। कुछ शब्द इस प्रकार हैं - जतन, निति, कटाच्छ, ईछन-तीछन, निसान, मूरत, मसाल, दसनि, पाती, बिसासी इत्यादि। अरबी फारसी के शब्दों को देखा जाय तो उनकी संख्या भी कम नहीं है जैसे - यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूँ, आशिक, इश्क, बेदरद, कहर, इश्कमजाजी, नशा, तकसीर, तकदीर, तदबीर, आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय है।

तत्सम, तद्भव, ब्रजभाषा के ठेठ रूप और अप्रचलित शब्दों तथा अरबी-फारसी भाषा के चुने हुए शब्दों से जहाँ घनानन्द ने अपनी भाषा को समृद्ध किया, वहीं उनकी काव्यभाषा पंजाबी शब्द-समूह को भी अपने में समाहित किये है। जैसे - लैंदा, सोहणाँ, गल्ला, जिंन्द, नाल, कीता, जाणदा, हुण, तैनु-वेखाँ, कित्थे, लग्या आदि।

छंद एवं अलंकार - रीतिकाल छंदबद्ध कविता का काल था। घनानन्द कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार एवं गायक भी थें। अतः उनकी रचनाएँ छंद विधान में पूरी तरह आबद्ध हैं। घनानन्द ने श्रृंगार और प्रेम के काव्य को ध्यान में रखकर ही कवित्त और सवैया छंदों का प्रयोग किया है। डॉ0 मनोहर लाल गौड के शब्दों में '' आनन्दघन के सवैये अधिक संख्या में ऐसे ही हैं जो अत्यन्त कोमल शब्दावली में लिखे गये हैं और जिनमें संगीत की मधुर गूंज उत्पन्न होती है'' इन दो छन्दों के अतिरिक्त घनानन्द ने जिन अन्य छन्दों का प्रयोग किया है वे हैं - सुमेरू, त्रिलोकी, ताटंक, निसानी, शोभन, त्रिभंगी, प्रबन्ध काव्य में दोहे-चौपाई का भी प्रयोग किया है।

अलंकार की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का विवेचन विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है परन्तु अलंकार उनके काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर भी चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकारों की योजना नहीं की गई है/घनानन्द के काव्य में जो अलंकार आये हैं - वे उनके काव्य

को अधिक स्पष्टता और गहराई के साथ प्रस्तुत करने में ही सहायक हैं। इस बारे में स्वयं घनानन्द का कथन है - ''लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत'' अर्थात जहाँ बाकी कवि (रीतिमार्गी) जी तोड़ कोशिश करके काव्य शास्त्र के नियमों का सहारा लेकर अलंकारों से सुसज्जित कर काव्य बनाने में लगे रहते हैं - वहाँ मैं तो कुछ भी नहीं करता-मेरे कवित्त मुझे बनाने हैं। अर्थात जो मैं जैसा अनुभव करता हूँ उसे वैसे ही अभिव्यक्त कर देता हूँ वास्तव में घनानन्द ने सायास कभी नहीं कहा, जो कुछ भी कहा वह उनके हृदय की सहज अभिव्यक्ति बन कर प्रकट हुआ। घनानन्द के काव्य में हमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो मिल जाते हैं फिर भी उन्होंने विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है।

घनानन्द की शैली में जो अलंकारण है वह उनके व्यक्तित्व से ही प्रसूत है। अलंकारों के नितान्त वैयक्तिक प्रयोग, सूझ की मार्मिकता के साथ-साथ नवीनता और अनोखापन उन्हें ब्रज-भाषा के अद्वितीय कवि की श्रेणी में बिठा देते हैं। उनके काव्य में जहाँ हमें असाधारण भावुकता के दर्शन होते हैं वहीं उनके काव्य के कला-पक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं।

अभ्यास प्रश्न -3

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) घनानन्द के काव्य में संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या अधिक है। ( )
ख) घनानन्द के काव्य में वियोग सम्बन्धी कवित्त अत्यल्प है। ( )
ग) घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि हैं। ( )
घ) घनानन्द की भक्ति भावना पर सूफी भक्ति भावना का थोड़ा प्रभाव पड़ा है।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) घनानन्द का रूप-सौन्दर्य वर्णन..... है।

1. स्वानुभूत है।
2. चमत्कारिक है।
3. माँसल है।

(ख) घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग..... किया है।

1. चमत्कार लाने के लिए
2. भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए
3. कविता को सजाने के लिए

(ग) घनानन्द ने अपने काव्य में मुख्य रूप से.....छंदों का प्रयोग किया है।

1. घनाक्षरी और हरि गीतिका
2. सोरठा और रोला

3. कवित्त और सवैया

(घ) घनानन्द की काव्य भाषा में प्रयुक्त लैंदा, सोहणां, गल्ला, जाणदा, जैसे शब्द .....शब्द समूह हैं।

1. तत्सम
2. पंजाबी
3. तद्भव

3. घनानन्द की भक्ति भावना पर अपने विचार दीजिए ? (उत्तर पाँच पंक्तियों में)

14.6 सारांश

इस इकाई में आपने रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानन्द का अध्ययन किया। घनानन्द ने स्वानुभूत प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति द्वारा रीतिकाल की रीति परम्परा का विरोध कर कविता को बँधे -बँधाये धारो से मुक्त किया घनानन्द का श्रृंगार वर्णन रीतिकालीन अन्य कवियों की तुलना में बिल्कुल भिन्नता लिए है, वह नायिका भेद, नखशिख वर्णन इत्यादि से मुक्त होकर स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण करता है। क्योंकि उनके प्रेम निरूपण की मुख्य प्रेरणा उनकी प्रेमिका सुजान थी। सुजान के रूप चित्रण में कवि का मन रमा है। किन्तु घनानन्द के श्रृंगार वर्णन में सुजान का रूप चित्रण इतना मुख्य नहीं है जितना सुजान के वियोग का वर्णन। सुजान के साथ अधिक समय रहने का मौका घनानन्द को नहीं मिला। सुजान से अलग रहते हुए विरह की जितनी भी मार्मिक अनुभूतियों से घनानन्द को गुजरना पड़ा, उन सबका उन्होंने स्वानुभूत वर्णन किया। वस्तुतः वह प्रेम के ही कवि हैं।

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो घनानन्द को विकसित ब्रजभाषा की परम्परा मिली और उन्होंने परम्परा से प्राप्त ब्रज भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्दों को समाहित कर ब्रजभाषा के शब्द भंडार को और अधिक समृद्ध किया। घनानन्द ने मुख्य रूप कवित्त और सवैया छंदो का प्रयोग किया। अलंकारों का प्रयोग उन्होंने चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु भावों में गहराई लाने के लिए किया।

14.7 शब्दावली

आनन	-	मुख
छके	-	तृप्त
लोल	-	चंचल
जलजावली	-	दो लट की मोतियों की माला
कलोल	-	क्रीड़ा
चखनि	-	नेत्र
लड़काय	-	ललक के साथ
कानन	-	जंगल

बाबरी	-	पागल
ताकिबौ	-	देखना
सौं	-	पुतलियों से
इकतार	-	एकटक
सोहन	-	सामने
जोहन	-	देखना
सकेलि	-	एकत्र करना
आन	-	अन्य, अशुभ
बिरंचि	-	विधाता
निस द्यौंस	-	रात दिन
अरी	-	अड़ना
मोरनि	-	मुड़ना
ढोरनि	-	ढलने की भाँति
बाहनि	-	बहते हुए
अवगाहनि	-	धँसना
उसांस	-	उच्छ्वास
ध्यावस	-	धैर्य
सींचति ही	-	स्पर्श होते ही
हियरा	-	हृदय
सियराई	-	शीतलता
हिराई	-	खो जाती है
अनंग की आँचनि	-	काम की अग्नि
अगिलाई	-	आग

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (☐)

(ख) (×)

(ग) (×)

(घ) (☐)

2) (क) (आनन्द)

(ख) (1715)

(ग) (अहमद शाह अब्दाली)

(घ) (बहुगुनी)

3) घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखीनाम' लेना पड़ता था अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी'।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (×)

(ख) (☐)

(ग) (☐)

(घ) (×)

2) (क) (मानवीकरण अलंकार)

(ख) (उपमा अलंकार)

3) क- हे प्रियतम ! आपके सौन्दर्य की रीति अपूर्व है अर्थात आपके सौन्दर्य में विलक्षणता विद्यमान है इसे जितना ही देखो उतना ही यह नया प्रतीत होता है।

ख- हे कृष्ण ! प्रेम का मार्ग तो अत्यन्त सीधा और सरल है। इस प्रेम मार्ग में तनिक भी चालाकी और कुटिलता नहीं होती।

अभ्यास प्रश्न - 3

1) (क) (×)

(ख) (×)

(ग) (☐)

(घ) (☐)

2) (क) (स्वानुभूत है)

(ख) (भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए)

(ग) (कवित्त और सवैया)

(घ) (पंजाबी शब्द समूह)

3) घनानन्द जीवन के उत्तरार्ध में राधा-कृष्ण के प्रति भक्तिभाव रखकर भक्ति परक रचनाएँ करने लगे थे। सूफी भक्ति भावना का भी उन पर कुछ प्रभाव पड़ा था लेकिन सूफियों की इस मान्यता को कि-आत्मा पुरूष है और परमात्मा स्त्री-उन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु सूफी काव्य धारा की विरहगत स्थितियों आत्मा की तड़प, बेचैनी, व्यग्रता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, राम देव, घनानन्द का काव्य द मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, बम्बई, कल्कत्ता, मद्रास।
2. बहुगुणा, शम्भु प्रसाद, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग।
3. वर्मा, कृष्ण चन्द्र, घनानन्द रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, आगरा, 1966
4. भाटी, देशराज सिंह, घनानन्द की वाग्विभूति भारतीभवन, आगरा।

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रामा प्रकाशन।
2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव, हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध स्मृति प्रकाशन।
3. नगेन्द्र डॉ, रीतिकाव्य की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घनानन्द का जीवन परिचय दीजिए ?
2. घनानन्द द्वारा वर्णित प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए ?
3. घनानन्द के शिल्प पर प्रकाश डालिए ?
4. घनानन्द की विरह भावना पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 15 मतिराम - परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम
15.3.1 कवि मतिराम-परिचय
15.3.2 मतिराम की रचनाएँ
15.4 मतिराम की कविता - संदर्भ सहित व्याख्या
15.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
15.5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भाव पक्ष
15.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के काव्य का अध्ययन करेंगें। अब तक आप रीतिकाल की तीनों प्रवृत्तियों (रीतिबद्ध,रीतिसिद्ध,रीतिमुक्त) से अवगत हो चुके हैं। जिन कवियों ने रस अलंकार आदि काव्यांगो के लक्षण के अनुसार श्रृंगार काव्य की रचना की उन्हें रीति बद्ध कहा गया,जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परंतु काव्य रचना करते हुए उनकी दृष्टि इन ग्रन्थों की रीति का अनुपालन करती रही उन्हें रीति सिद्ध कहा गया और जिन्होंने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और न ही जो रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित हुए बल्कि जिन्होंने स्वतन्त्र रूप में काव्य रचना की उन्हें रीति मुक्त कवि कहा गया। इस परिचय के बाद अब आप रीतिबद्ध कविता के एक प्रतिनिधि कवि मतिराम का परिचय इस इकाई में प्राप्त करेंगें। इसके बाद आपको उनकी रचनाओं से अवगत कराया जाएगा। तत्पश्चात् आप मतिराम के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन परिचय के साथ साथ उनके काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करते हुए उनकी कविताओं की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप

- रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- मतिराम की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- मतिराम की कविताओं को समझ सकेंगे।
- मतिराम के काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कविता में मतिराम के महत्व को समझ सकेंगे।

15.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम

इस तथ्य से आप अवगत होंगे कि रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वे ग्रंथ रचना किया करते थे, इसीलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया। डॉ0 नगेन्द्र ने रीतिबद्ध के स्थान पर इनका नाम रीतिकार अथवा 'आचार्य कवि' रखा है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

रीतिबद्ध कवियों के भी दो वर्ग हैं-1.सर्वांग निरूपक और 2. विशिष्टांग निरूपक।

जो कवि समस्त काव्यांगो- रस,अलंकार,छन्द, शब्दशक्ति आदि का विवेचन करते हैं उन्हें सर्वांग निरूपक कवि माना गया है तथा जो कवि सभी काव्यांगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार,छन्द आदि में से एक,दो या तीन अंगों को ही अपने विवेचन का विषय बनाते हैं उन्हें विशिष्टांग निरूपक कवि माना जाता है। हमारे आलोच्य कवि मतिराम का स्थान इसी वर्ग में ठहरता है। श्रृंगार रस को रसशिरोमणि मानकर केवल उसी का सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सबसे पहले लिया जाता है।

15.3.1 कवि मतिराम-परिचय-

मतिराम के जीवनवृत्त की सूचना प्रायः हिन्दी साहित्य के समस्त इतिहास ग्रन्थों में मिलती है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों- शिवसिंह सेंगर, गार्सा-द-तासी, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो तथ्य मतिराम के जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं के संबंध में दिये हैं, वह प्रसिद्ध ग्रन्थों पर आधारित है। मतिराम की जीवनी और साहित्य को लेकर दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे गये हैं वे हैं महेन्द्र कुमार का "मतिराम- कवि और आचार्य" और त्रिभुवन सिंह का "महाकवि मतिराम"। इन दोनों ग्रन्थों में लगभग सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु अनेक प्रमाण होते हुए भी इन

दोनों विद्वानों ने मतिराम के नाम पर मिलने वाले समस्त ग्रन्थों के रचियता एक ही और प्रसिद्ध कवि मतिराम को माना है। लेकिन भगीरथ मिश्र, मतिराम के नाम के दो कवियों को स्वीकार करते हैं और मतिराम के नाम से मिलने वाली रचनाओं में से रसराज, ललितललाम, फूलमंजरी और मतिराम सतसई को प्रसिद्ध कवि मतिराम की रचनाऐं एवं शेष चार अर्थात छंदसार पिंगल या वृत्तकौमुदी, अलंकार पंचाशिका, साहित्यसार, लक्षण श्रृंगार को दूसरे मतिराम की रचनाएँ मानते हैं। इस संबंध में तर्क देते हुए वे कहते हैं कि-

1. मतिराम का जन्म-समय १६0३ ई. (स0 १६६0) के लगभग आता है और वृत्तकौमुदी की रचना उन्होंने १७0१ ई. (स0१७५८) में की और कुछ लोगों का विचार है कि 'साहित्यसार' आदि की रचना और भी बाद में हुई। एक ही व्यक्ति के सभी ग्रन्थ मानने पर वृत्तकौमुदी की रचना 98 वर्श की आयु में और अन्य ग्रन्थों की रचना उसके भी बाद ठहरती है। इस अवस्था में मतिराम का श्रीनगर (गढवाल) के राजा स्वरूप साहि बुन्देला के आश्रय में जाना और छन्दसार-संग्रह या वृत्तकौमुदी की रचना करना अधिक संगत नहीं जान पड़ता।

2. दोनों मतिरामों के समयों में ही थोड़ी भिन्नता नहीं, वरन् दोनों का कार्यक्षेत्र भी भिन्न रहा है। एक मतिराम का आगरा, बूँदी आदि था तथा दूसरे मतिराम का पहाड़ी क्षेत्र कुमाऊँ गढ़वाल आदि था।

3. दोनों की भाषा-शैली में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। जहाँ रसराज और ललित ललाम के रचयिता मतिराम की भाषा समर्थ, विदग्ध, अलंकार एवं भाव व्यंजना अद्भुत क्षमता सम्पन्न तथा छन्द प्रवाह पूर्ण सुन्दर, मोहक गतिवाले हैं वहाँ वृत्तकौमुदीकार की भाषा सामान्य, छन्द शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है।

4. दोनों मतिरामों के वंश परिचय भिन्न-भिन्न हैं और दोनों का संबंध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।

5.यदि अलंकार पंचाशिका और वृत्तकौमुदी या छंदसार संग्रह ग्रन्थ बाद में प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्व अवस्था में लिखे गये होते तो वे निश्चय ही वैचारिक और भाषा संबंधी अधिक प्रौढता का द्योतन करते परन्तु ऐसा नहीं है।

15.3.2 गोत्र: पितृनाम एवं बंधु

अधिकांश विद्वान (शिव सिंह, विश्वनाथ प्रसाद, भगीरथ मिश्र) महाकवि मतिराम को तिकवॉपुर निवासी, रत्नाकर अथवा रतिनाथ पुत्र, कश्यपगोत्रीय और चिंतामणि एवं भूषण का सहोदर मानने के पक्ष में हैं। लेकिन भगीरथ प्रसाद दीक्षित, डॉ0 महेन्द्र कुमार के अनुसार मतिराम वत्सगोत्रीय, बनपुर में जन्म लेने वाले विश्वनाथ पुत्र हैं और 'चिन्तामणि' और 'भूषण' कोई भी उनका सहोदर नहीं था।

मतिराम ने किसी भी ग्रन्थ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म समय के संबंध में कुछ कहना कठिन है 'फूलमंजरी' के आधार पर इनका जन्म समय कृष्णबिहारी मिश्र ने

१६02 ई. (सं0१६६0 वि0) के लगभग माना है। ''फूलमंजरी'' इनकी पहली रचना है जो जहाँ गीर की आज्ञा से लिखी गई। जहाँ गीर अपने राज्यारोहण का १६ वाँ जलूसी वर्ष आगरा में मना रहा था, उसी समय के आस-पास इसकी रचना हो सकती है। वह समय १०३0 हिजरी या सं0 १६७८ था। मतिराम की यह किशोरावस्था की रचना मानने से उनकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की रही होगी। अतः मतिराम का जन्म १६02 ई.(१६६0 वि0) ठहरता है।

15.3.3 मतिराम की रचनाएँ

मतिराम का अधिकांश समय बूँदी दरबार में व्यतीत हुआ था और वहाँ के हाड़ा राजाओं की वीरता और चरित्र का वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ 'ललित ललाम' में किया है। महाकवि मतिराम के जिन ग्रन्थों का पता अब तक लगा है, उनका परिचय इस प्रकार है-

1) फूलमंजरी- इस ग्रंथ में ६0 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर 59 दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है। इनमें कवि की प्रतिभा का विशेष चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी वर्णनश शैली और शब्दमाधुर्य आदि सभी गुणों की दृष्टि से इसके दोहे मतिराम की अन्य रचनाओं के समान ही हैं। उक्तिचमत्कार में जो कमी दिखलाई देती है वह इस अनुमान को पुष्ट करती है कि यह पुस्तक कवि की प्रथम रचना है।

2) रसराज - इस ग्रंथ में श्रृगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं लिखा गया है। कवि मतिराम का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ हैं, क्योंकि इस पर कई उत्कृष्ट कवियों ने टीकाएं लिखी हैं। चरखारी के राजा रतनसिंह के आश्रित बख्तेश कवि ने रसराज पर एक उत्कृष्ट टीका लिखी है। इस ग्रंथ का रचनाकाल सं0 1690 और 1700 के बीच में माना जाता है।

3) छंदसार पिगंल- कहा जाता है कि श्रीनगर के फतेहसिंह बुँदेला के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई थी। इसका निर्माण काल अनिश्चित है, पर अनुमान किया जाता है कि यह संभवतः सं0 1700 और 1790 के बीच में लिखा गया।

4) ललित ललाम - यह अलंकारशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। बूँदी के महाराजा भावसिंह जी के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई है। इसका रचना काल अनुमानतः 1718 और 1719 संवत् के बीच का हो सकता है।

5) मतिराम सतसई - यह पुस्तक किन्हीं भोगराज नाम के राजा के लिए मतिराम जी ने लिखी थी। इस ग्रंथ का भी समय अनिश्चित् है। मतिराम ग्रंथावली (सं0 कृष्ण बिहारी मिश्र) के अनुसार इसकी रचना ''रसराज'' और ''ललित ललाम'' के बाद की है। संभवतः यह ग्रंथ संवत् 1725 और 1735 के बीच का रहा होगा।

6) सहित्य सार - यह 90 पृष्ठों का छोटा सा ग्रन्थ है। इसमें नायिका भेद का वर्णन है। यह प्रति संन् 1837 की लिखी हुई है।

7) लक्षण श्रृंगार - यह 14 पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें भावों और विभागों का वर्णन है। इसकी रचना भी संभवतः 1745 के लगभग हुई होगी।

8) अलंकार पंचाशिका - यह ग्रन्थ संवत् 1745 में कुमाऊँ के राजा उदोतचंद के लिए कवि मतिराम ने लिखा था।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (☐) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

   (क) मतिराम सर्वांग निरूपक कवि थे।
   (ख) मतिराम विशिष्टांग निरूपक कवि थे।
   (ग) मतिराम रीतिमुक्त कवि थे।
   (घ) मतिराम रीतिसिद्ध कवि थे।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) ..... के अनुसार मतिराम नाम के दो कवि हुए हैं।

(ख) .....मतिराम की पहली रचना है।

(ग) कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार मतिराम का जन्म.....के लगभग आता है।

(घ) ललित ललाम मतिराम का ..... संबंधी ग्रन्थ है।

3. मतिराम के ग्रंथ फूल मंजरी पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

15.4 मतिराम की कविता –

आपने मतिराम की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि मतिराम की कविता की व्याख्या किस प्रकार की जाती है। कुछ पदों की व्याख्या हम यहाँ कर रहे हैं। इसकी सहायता से आप मतिराम के अन्य पदों की भी व्याख्या कर सकेंगे।

(1)

पारावार पीतम को प्यारी है मिली है गंग
बरनत कोऊ कवि-कोविद निहारिकै।

सो तो मतो मतिराम के न मन मानै निज
मतिराम सौं कहत यह वचन विचारिकै।
जरत बरत बड़वानल सौं बारिनिधि
वीचिनि के सोर सो जनावत पुकारिकै।
ज्यावत विरंचि ताहि प्यावत पियूष निज
कलानिधि-मंडल-कमंडल तें ढारिकै।।

संदर्भ: - प्रस्तुत पंक्तियाँ महाकवि मतिराम काव्य रचना ''ललित ललाम''से उद्धृत हैं।

प्रसंग: - सागर से गंगा के मिलन को एक अलग दृष्टि से देखते हुए कवि मतिराम कहते हैं -

व्याख्या: – प्राय: कवि कहते हैं कि वह देखो भगवती जाह्नवी प्रियतमा के रूप में अपने प्रियतम सागर से मिल रही है। मतिराम कवि को यह कथन ठीक नहीं लगता। उनका मत तो यह है कि बेचारा समुद्र बड़वानल की ज्वाल-मालाओं से झुलसा जा रहा है। ब्रह्मा से इस भयंकर आपदा से ऋण पाने के लिए पुकार-पुकार कर प्रार्थना कर रहा है। सागर तरंगों का करूणापूर्ण शब्द इसी प्रार्थना की सूचना देता है। ब्रह्मा को भी दया आ गई है। यह बड़ा-सा-चन्द्रमा उनका कमंडल है। इसमें लबालब पीयूष भरा हुआ है झुलसते हुए समुद्र को जिलाने के लिए उन्होंने इस कमंडल से सुधा ढरका दी है। यह गंगा नहीं है, वही ब्रह्मा के चंद्रकमंडल से गिरी सुधाधारा है, जिसे समुद्र पान कर रहा है।

विशेष: - इस पद में कवि ने अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास की छटा भी देखते बनती है जैसे –

(2)

पारावार पीतम, कोऊ कवि कोविद, वचन विचारिकै।
रावरे नेह को लाज तजौ अरू गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दियो गुरू लोगन को डरू गाम चबाय में नाम धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो मतिराम सबै बहराए।
कोऊ कितेक उपाय करो कहूँ होत हैं आपने पीउ पराए।।

संदर्भ: - प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिकालीन कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ रसराज से ली गई हैं। रसराज में श्रंगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है।

प्रसंग: - परकीया खंडिता नायिका नायक को मृदुल फटकार देते हुए कहती है।

व्याख्या: - आपके स्नेह के कारण मैने लज्जा का त्याग किया। घर के सब काम काज भूल बैठी। गुरूजनों का भय भुला दिया। गाँव में अपने विषय में बदनामी होने दी। मैंने यह सब आपके हित की बातें की भी तो क्या हुआ? आपने तो सभी भुला डाला। सच है, कोई लाख प्रयत्न कर ले पराया प्रियतम भी कभी अपना हुआ है।

विशेषः - ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने अर्थातरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। अंतिम पद में जो झिड़की है, वह बड़ी सुकुमार मृदुल एवं रसीली है। नायिका ने नायक के लिए जो बदनामी झेली उसका नायक पर कोई असर नहीं हुआ अतः अवज्ञा अलंकार भी पद में विद्यमान है।

(3)

दोऊ अनंद सौं आँगन माँझ बिराजै असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाऊँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसि कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहासु गयो उड़ि हंस की नाई।।

संदर्भः प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिबद्ध कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' से उद्धृत हैं।

प्रसंगः - पति के मुख से अन्य स्त्री का नाम सुनकर नायिका मान करती है। मानवती नायिका का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं।

व्याख्याः - असाढ की सुहानी संध्या में नायक और नायिका आनंद से आँगन में बैठे थे। बातों ही बातों में नायक के मुँह से अन्य स्त्री का नाम निकल गया नायिका कुपित हो गई। उसकी भौंहे इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई। आँसू पावस ऋतु की बूँदों के समान बरसने लगे हँसी हंसके समान उड़ गई।

विशेष - इस सवैया में कवि ने उपमा का सुंदर प्रयोग किया है। मानवती नायिका की भौहे पावन ऋतु में दिखाई पड़ने वाले इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई और आँसू बूँदों के समान गिरने लगे।

(4)

पावस भीति वियोगिनी बालनि यों समुझाय सखी सुख साजैं।
जोति जवाहिर की मतिराम नहीं सुरचाप छिनौं छवि छाजैं।
दंत लसै बकपाँति नहीं धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैं।
रीझिकै भाऊ नरिंद दिये कविराजनि के राजराज बिराजैं।।

संदर्भः- प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि मतिराम के ग्रंथ 'ललित ललाम' से उद्धृत है। ललित ललाम कवि का अलंकार शास्त्र संबंधी ग्रंथ है।

प्रसंगः- पावस-ऋतु के विभिन्न उपादानों पर बूँदी नरेश रावराजा भाऊसिंह के विशालकाय हाथियों का आरोप कर सखियाँ विरह विदग्ध नायिकाओं से कहती हैं -

व्याख्याः- पावस-ऋतु में विरह पीड़िता बालाओं को चतुराई से समझते हुए कहती हैं कि तुम सामने जिनको मेघ समझ कर विकल हो रही हो, वे वास्तव में मेघ नहीं बल्कि रावराजा

भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों का समूह है। वियोगिनियों के पूछने पर कि-फिर यह इन्द्रधनुष कैसा ? बकपंक्ति कैसी ? और वर्षाकाल में होने वाला गंभीर गर्जन कैसा ! सखियाँ इन शंकाओं का भी समाधान करते हुए कहती हैं कि जिन बहुमूल्य जवाहरात से गजों के शरीर सजाए गए हैं, उन्हीं की विविध रंगों की ज्योति से इन्द्रधनुष का भ्रम हो रहा है उसी प्रकार हाथियों की दाँतों की पंक्तियाँ बक पंक्ति का भ्रम उत्पन्न कर रही है और दुंदुभी का शब्द ही घोर घनगर्जन के समान सुनाई पड़ता है।

विशेष:- प्रस्तुत सवैये में वास्तविक पावस-ऋतु को छिपाकर हाथियों का वर्णन होने से अपह्नुति अलंकार है। प्रस्तुत छंद बूँदी नरेश की दान वीरता को भी स्पष्ट करता है।

(5)

सुनि-सुनि गुन सब गोपिकनि समुभयो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी मुरली है करि नाद।।

संदर्भ:- प्रस्तुत छंद मतिराम सतसई से उद्धृत है। मतिराम सतसई के दोहों में एक से बढ़कर एक भाव विद्यमान है।

प्रसंग:- श्रीकृष्ण की मुरली से निकलने वाली रागिनियों की सरलता से आह्मदित होकर गोपियाँ आनंदित हो रही हैं -

व्याख्या:- श्रीकृष्ण की मुरली बज रही है। उसका मधुर स्वर गोपियों के कानों में गूँज रहा है। इस सरस नाद का स्वर उन्हें आनन्दमय अनुभव दे रहा है। उनका तो कहना है कि श्यामसुंदर के अधरों की माधुरी ही इस नाद रूप में निकलकर चारों ओर व्याप्त हो रही है।

विशेषः - कवित्त और सवैया जैसे लंबे छंदों की भाँति मतिराम जी ने दोहे जैसे छोटे छंद में भी भावों को पूर्णता प्रदान की है। प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास की सुंदर छटा होने के साथ ही मुरली के मधुर स्वर को आस्वाद्य बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(6)

करौ कोटि अपराध तुम वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष।

संदर्भ:-प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि मतिराम की प्रसिद्ध रचना मतिराम सतसई से उद्धृत है।

प्रसंग:- नायिका के हृदय की उदारता का वर्णन करते हुए कोई सखी नायक से कहती है।

व्याख्या:- आप चाहे कितना ही अपराध कर लैं, पर वह रूष्ट नहीं होगी, क्योंकि प्रिय के स्नेह रूपी सागर में सभी दोष डूब जाते हैं। वास्तविक स्नेह दोषों को नहीं देखता।

विशेष:- रूपक अलंकार के साथ साथ अनुप्रास भी उल्लेखनीय है।

(7)

ज्याल जाल बिज्जुलि छटा घटा धूम अनुहारि।
विरहिनि जारनि को मनो लाई मदन देंवारि।

संदर्भ:- प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के सुकुमार कवि मतिराम की रचना 'मतिराम सतसई' से लिया गया है। सतसई में विरह का वर्णन बहुत उत्कृष्ट हुआ है। बिहारी तथा देव का विरह वर्णन तो अच्छा है ही, पर मतिराम जी ने भी विरह वर्णन में अपनी प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखाया है।

प्रसंग:- पावस-ऋतु में विरहिणी की दशा का वर्णन इस प्रकार है -

व्याख्या:- वर्षा क्या आई, मानो कामदेव ने विरहिणी को जलाने के लिए दावाग्नि जला दी। ये घटाएँ बिल्कुल धुएँ के अनुरूप हैं तथा बिजली की चमक दावानाल की ज्वालमालाओं की समता करती हैं।

विशेष:- ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग कर 'पावक के प्रथम पयोद' का बिम्ब प्रस्तुत कर नायिका के विरह का वर्णन किया है।

15.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

मतिराम उस युग के कवि हैं जिसे हम 'रीतिकाल' या 'श्रृंगारकाल' कहते हैं। युग के बंधनों में बंधे रहकर भी भावचित्र की सहज अभिव्यक्ति के कारण वे उत्कृष्ट और सच्चे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। भावुक और सहज कवि होते हुए भी अपनी रसमयी भावनाओं के अभिव्यंजनार्थ 'मतिराम' ने जो मार्ग ग्रहण किया उसमें श्रृंगारी भावना के प्रति विशेष मोह और आसक्ति थी। उनके कवि कर्म पर विचार करते हुए यदि हम उनके अलंकार और छंद की कृतियों केा छोड़ दे तो कह सकते हैं कि वे सामंतयुगीन श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे। संभवतः उनका प्रिय विषय श्रृंगार था इसीलिए उन्होंने अपने श्रृंगारी काव्यसर्जन के लिए 'रसराज' का वह माध्यम अपनाया जो उस युग रूढ़ लक्षण ग्रन्थों के प्रकाश में अपना पथ बनाता रहा।

15.5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भावपक्ष

श्रृंगारिकता - 'रसराज' मतिराम का मुख्य श्रृंगारी ग्रंथ है। रीतिश्रृंखला के आरम्भिक ग्रंथों में यह बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। मुक्तक कविता में भावमयी कल्पना, सहज प्रतिभा और मनोहारी अभिव्यक्ति की शक्ति से समन्वित 'मतिराम' का रसराज युग की उत्तम रचना हैं। इसमें कवि ने नायिका भेद के अतिरिक्त भाव की परिभाषा दी है। 'भाव' के लक्षण में 'केशव' ने आखों, मुँह

और वाणी से मन की बात प्रकट करना बताया पर मतिराम ने भाव प्रकट करने वाले उपकरणों में परिधि का विस्तार किया है। उन्होंने कहा है -

''लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास, भाव, धृति, मोद।
इनते प्रगटत जानिये वरनहि सुकवि विनोद''।।

नयिकाभेद संबंधी इनके उदाहरण अत्यंत सरस, रमणीय और हृदयस्पर्शी हैं। उदाहरणों की भावमय और चारूता में मतिराम का कवित्व निखर उठा है। लज्जावती मुग्धा नायिका का एक चित्र इस प्रकार है -

''अभिनव जौवन-ज्योति सौं जगमग होत विलास।
तिय के तनु पानिप बढै, पिय के नैननि प्यास।।

नायिका के अवयव वर्णन में मतिराम ने मुख, कपोल, वेनी, नेत्र, अधर, कपोल, कटि, हाथ पाँव आदि का वर्णन किया है। परन्तु उनकी सतसई में सर्वाधिक वर्णन नेत्रों का है -

''भौंह कमान कटाक्ष सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहँन के सजल सुभट से नैन।।''

× × ×

''मानत लाज लगाम न हिं नैक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँह जोर।।''

संयोग श्रृंगार के वर्णन में मतिराम ने ऐसे अनेक चित्रों को अंकित किया है, जो अपरिष्कृत और अश्लील कहे जा सकते हैं। वियोग श्रृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। विरह के पूर्वराग, मान और प्रवास के तीनों पक्षों के उन्होंने 'रसराज' के अतिरिक्त 'सतसई' में भी बहुत से चित्र खींचे हैं। परम्परागत होने पर भी मान के ये रूप चित्र (विशेषतः स्वकीयासंबद्ध) बड़े ही मधुर और सरल हैं -

''बाल सखिन की सीख तैं मान न जानति ठानि।
बिन पिय-आगम भौन में बैठी भौंहैं तानि।।''

संचारी भावों के अंकन में 'मतिराम' अत्यधिक समर्थ हैं। औत्सुक्य, अभिलाषा, स्वप्न, चिंता, और स्मृति तथा दूसरे पक्ष में उन्माद, व्याधि, जड़ता और उद्वेग आदि के सरस चित्रों के वर्णन में उनकी प्रतिभा अप्रतिम है। मुख्यतः 'रसराज' में इन्हें देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि आलंबन, उद्वीपन, सात्विक भाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के बहुत ही सजीव, अकृत्रिम और प्रभावशाली चित्र 'मतिराम' ने अपनी कविता में चित्रित किये हैं।

सामंती परिवेश में रहकर भी इनकी रचना में ग्राम्य जीवन के कुछ चित्र मिल जाते हैं। ऐसा लगता है कि गाँव के सरल जीवन, सहज आकषर्ण ने उनको प्रभावित किया है। बाग-बगीचों और खेत खलिहानों के बीच गाँव की किशोरी और उसके प्रेम को उपस्थित करने में

'मतिराम' के श्रृंगार का विशेष आग्रह दिखाई देता है। मतिराम के कुछ दोहों में विशेषतः - सतसई के छंदों में ऐसे अनेक अंश हैं, जिनमें गाँव के बीच प्रणय, की सहज अनुभूतियों के सुन्दर चित्र खींचे गये हैं -

खेत निहारो धान को यों बूझति मुसिक्याई।
यहौ हमारे पिय कहौ सघन ज्वारि दरसाई।।

समंती श्रृंगार के बीच रहते हुए और उसमें डूबे रहने पर भी 'मतिराम' की भावुक वृत्ति, गाँव की नायिकाओं के सच्चे भाव और भोले सौन्दर्य पर न्योछावर थी।

'मतिराम' की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा - ये तीन भेद स्वकीया के माने हैं। उनकी श्रृंगारी तृषा को जो संतोष स्वकीया और गृहवधुओं के विलास और कामकेलि के वर्णन में प्राप्त होता था, वह परकीया प्रसंग में नहीं।

वीरभाव - श्रृंगार के अतिरिक्त वीर भाव की अभिव्यक्ति मतिराम ने की है। 'ललित ललाम' में उन्होंने शैर्य और पराक्रम के भाव के चित्र खींचे हैं। आरम्भिक नृपवंश के वर्णन में उन्होंने युद्धोत्साह और दानोत्साह आदि के माध्यम से 'ललित ललाम' वीर रस की अच्छी अभिव्यक्ति की है। मतिराम वीर रस सम्पृक्त आलंबन के ओजमय चित्रण सहज उत्साह के साथ करते जान पड़ते हैं -

'मंदर-बिलंद मंद गति के चलैया, एक
पल में दलैया, पर-दल बलखनि के;
मदजल भरत मुकत जरकस झूल,
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के।
ऐसे गज बकसे दिवान दुहूँ दीननि कौं;
'मतिराम' गुन बरनैं उदार पानि के;

फौज के सिंगार हाथी और महिपालन के
मौज के सिंगार भावसिंह महादानि के।

प्रकृतिः - प्रकृतिवर्णन के प्रसंग में मतिराम की काव्यरूचि परंपराभुक्त रूढ़ि का ही अनुगमन करती है। वे वस्तुतः उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति के मादक और सौन्दर्य को देखते हैं। श्रृंगारी सुख दुख बोधों को बढ़ाने और तीव्र करने वाले उद्दीपन विभाव के रूप में उन्होंने अधिकांश रीतिकवियों के समान प्रकृति का उपयोग किया। संयोग वियोग परक श्रृंगार चित्रों के अंकन में पृष्ठभूमि सी धरती और प्रकृति-मतिराम के परम्पराग्रस्त वर्णनों में केवल चित्रपट तक ही रह गई

है। मानव अंतः करण की रागवृत्तियों के उद्भावन और विभावन में प्रकृति का आधार आलंबन बनकर अंकित होने को गौरव न पा सका। वर्षा, वसंत, आदि जैसे मादक ऋतुवर्णन के अतिरिक्त ग्रीष्म, शरद और शिशिर आदि के भी चित्र 'मतिराम' की कविता में उपलब्ध होते हैं।

15.5.2 भाषा, अलंकार और छंद

किसी भी सहित्यकार की भावों की अभिव्यक्ति का साधन भाषा होती है भावों और विचारों की वाहक भाषा ही होती है। भाषा प्रयोग की दृष्टि से 'मतिराम' प्रायः अत्यन्त सफल हैं। उनकी भाषा प्रायः अपने अकृत्रिम पर साथ ही अलंकार मंडित रूप को लेकर चलती है। उनकी भाषा में शब्दों के अर्थ, कृत्रिम और स्वामाविक रूप से उक्ति को सहजता और माधुर्य देते चलते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में - ''मतिराम की भाषा में आनुप्रासिक शब्द चमत्कार और अर्थालंकारगत नीरस अर्थचमत्कृति के लिए अशक्त शब्दों की भरती प्रायः कहीं नहीं मिलती। उनके शब्द और भाव - अधिकतः भाव व्यंजन के उपकरण उत्पादन के रूप में प्रयुक्त हैं'' आडंबरहीनता और भाव के प्रवाह से युक्त उनकी भाषा बनावटीपन से प्रायः दूर रहती हुई, काव्यसौष्ठव की उत्कृष्ट कला का स्वरूप अंकित करती है।

फारसी काव्यपरंपरा के प्रभाव से उनकी रचना में इलाज, बिरची, खलक, दरिआव, गनीम, जहान, गुमान, मजलिस आदि अनेक अरबी तथा फारसी शब्द मिलते हैं। पर प्रचलित और सटीक होने से प्रयोग सामान्यतः भावबोध में सहायक हैं।

छंदयोजना की दृष्टि से मतिराम का विस्तार अत्यन्त सीमित है। छप्पय और सोरठा के सीमित प्रयोग को यदि छोड़ दिया जाय तो उनके प्रिय छंद तीन ही हैं - सवैया, कवित्त और दोहा। इनमें भी सवैया उनका सर्वाधिक प्रिय छंद है।

मतिराम ने प्रायः सभी अलंकारों को अपने काव्य में समाहित किया है लेकिन अलंकारों का प्रयोग बड़ा संयत बन पड़ा है।

कुछ उदाहरण देखिये -

एरे मतिमंद चंद धिक है अनंद तेरो
जो पै विरहिनि जरि जात तेरे ताप ते।
तूँ तो दोषाकर दूजे धरे है कलंक उर
तीसरे कपालि संग देखो सिरछाप ते।
कहैं 'मतिराम' हाल जाहिर जहान तेरो
बारूनी के बासी भासी रबि के प्रताप ते।
बाँध्यो गयो मथ्यो गयो पियो गयो खारो भयो
बापुरो समुद्र तो कुपूत ही के पाप ते।।

दीपक अलंकार -

सकल सहेलिन के पीछे पीछे डोलति है
मंद-मंद गौन आज आपु ही करति है।
सनमुख होत सुख होत मतिराम जब
पौन लागे घूँघट के पट उघरत है।
जमुना के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल पै सँकोचन ते चाह्यो ना परत है।
तन तो तिया को बर भाँवरे भरत मन
साँवरे बदन पर भाँवरे भरत है।।

निष्कर्षतः मतिराम रीतिकाल के ऐसे कवि हैं - जो भावुकता के विचार से युगप्रभावित होकर भी उत्कृष्ट कलाकार है। काव्य शिल्प और अभिव्यंजना के विचार से उनकी कविता में उत्कर्ष और लालित्य का स्थान अक्षुण्ण है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (□) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

(क) मतिराम मुख्यतः श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे।

(ख) मतिराम की कविता में ग्राम्यजीवन के चित्र नहीं हैं।

(ग) मतिराम ने स्वकीया की अपेक्षा परकीया नायिका का चित्रण अधिक उल्लास से किया है।

(घ) मतिराम की काव्य-भाषा में फारसी के शब्द विद्यमान हैं।

2. रिक्त स्थान में सही विकल्प लिखिए -

(क) .....मतिराम का प्रिय छंद है

(सोरठा,छप्पय,सवैया,हरिगीतिका)

(ख) मतिराम ने युद्धोत्साह और दानोत्साह के माध्यम से अपने ग्रन्थ .....में वीररस की अच्छी अभिव्यंजना की है। (साहित्य सार,छंदसार पिंगल,रसराज,ललित ललाम)

(ग) मतिराम ने प्रकृति का.....रूप में ही चित्रण किया है।

(उद्दीपन,आलम्बन, दूती के रूप में, रहस्यात्मक रूप में)

(घ) मतिराम का मुख्य श्रंगारी ग्रन्थ.....है।

(फूलमंजरी,मतिराम सतसई, रसराज,लक्षण श्रृंगार)

15.6 सारांश

मतिराम रीतिकाल की रीतिबद्ध परम्परा के सुकुमार कवि माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार कई ग्रंथ लिखे, फिर भी इनकी अलंकृति बड़ी सहज और मार्मिक है। सौन्दर्य और श्रृंगार भावना की इनकी अभिव्यक्तियाँ अनूठी हैं। सामंती परिवेश में रहते हुए भी ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र इनकी कविता में मिल जाते हैं। मतिराम ने प्रकति का चित्रण परम्परा रूप में किया है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण सहज प्रतिभा के धनी कविवर मतिराम रीतियुग के एक उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं।

15.7 शब्दावली

पारावार	-	समुद्र
बरनत	-	वर्णन
निहारिकै	-	देखकर
ज्यावत	-	जीवित करते हैं
कलानिधि	-	चन्द्रमा
रावरे	-	तुम्हारे
चवाय	-	चुगली करना
सुरचाप	-	इन्द्रधनुष
नरिंद	-	नरेश
बूड़ि	-	डूब जाता है
बिज्जुलि	-	बिजली
दँवारि	-	दावाग्नि

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (×)

(ख) (□)

(ग) (×)

(घ) (×)

2) (क) (भगीरथ मिश्र)

(ख) (फूलमंजरी)

(ग) (1602ई. संन् 1660 वि0)

(घ) (अलंकार शास्त्र संबंधी)

3. फूल मंजरी मतीराम की पहली रचना है। इस ग्रंथ में 60 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर शेष सभी दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है।फूलमंजरी में कवि प्रतिभा का विशेष चमत्कार नही दिखाई देता है। फिर भी वर्णन शैली और शब्द माधुर्य की दृष्टि से यह रचना अच्छी है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (☐)
(ख) (×)
(ग) (×)
(घ) (☐)

2) (क) (सवैया)
(ख) (ललित ललाम)
(ग) (उद्दीपन)
(घ) (रसराज)

3) मतिराम की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। मतिराम को स्वकीया नायिका विशेष रूप से आकर्षित करती है। स्वकीया के उन्होंने तीन भेद माने हैं - मुग्धा, मध्या, और प्रौढ़ा, परकीया नायिका का चित्रण भी उनके काव्य में मिलता है। लेकिन स्वकीया के चित्रण में उनको अपार संतोष मिलता है।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, कृष्णबिहारी सं0, मतिराम ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. मिश्र, भगीरथ, रीतिकाव्य नवनीत ग्रन्थम, रामबाग कानपुर-12
3. गुप्त, राकेश, रीति-रसचतुर्वेदी डॉ0 ऋषिकुमार सं0 ग्रन्थायन।
4. गुप्त, जगदीश, रीति-काव्य संग्रह,ग्रन्थम प्रिंटिंग प्रेस, साकेत नगर, कानपुर - 14 (1983)

15.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रामा प्रकाशन,

2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव , हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध स्मृतिप्रकाशन
3. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मतिराम की श्रृंगार भावना पर एक निबन्ध लिखिए ?
2. मतिराम की काव्य भाषा पर प्रकाश डालिए ?
3. मतिराम के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ?
4. मतिराम के जीवन वृत्तांत पर प्रकाश डालिए ?